वर्ष-2, अंक-5
इंटरनेट संस्करण : 68

पत्रिका गर्भनाल

ISSN 2249–5967
जुलाई 2012

प्रवासी भारतीयों की मासिक पत्रिका

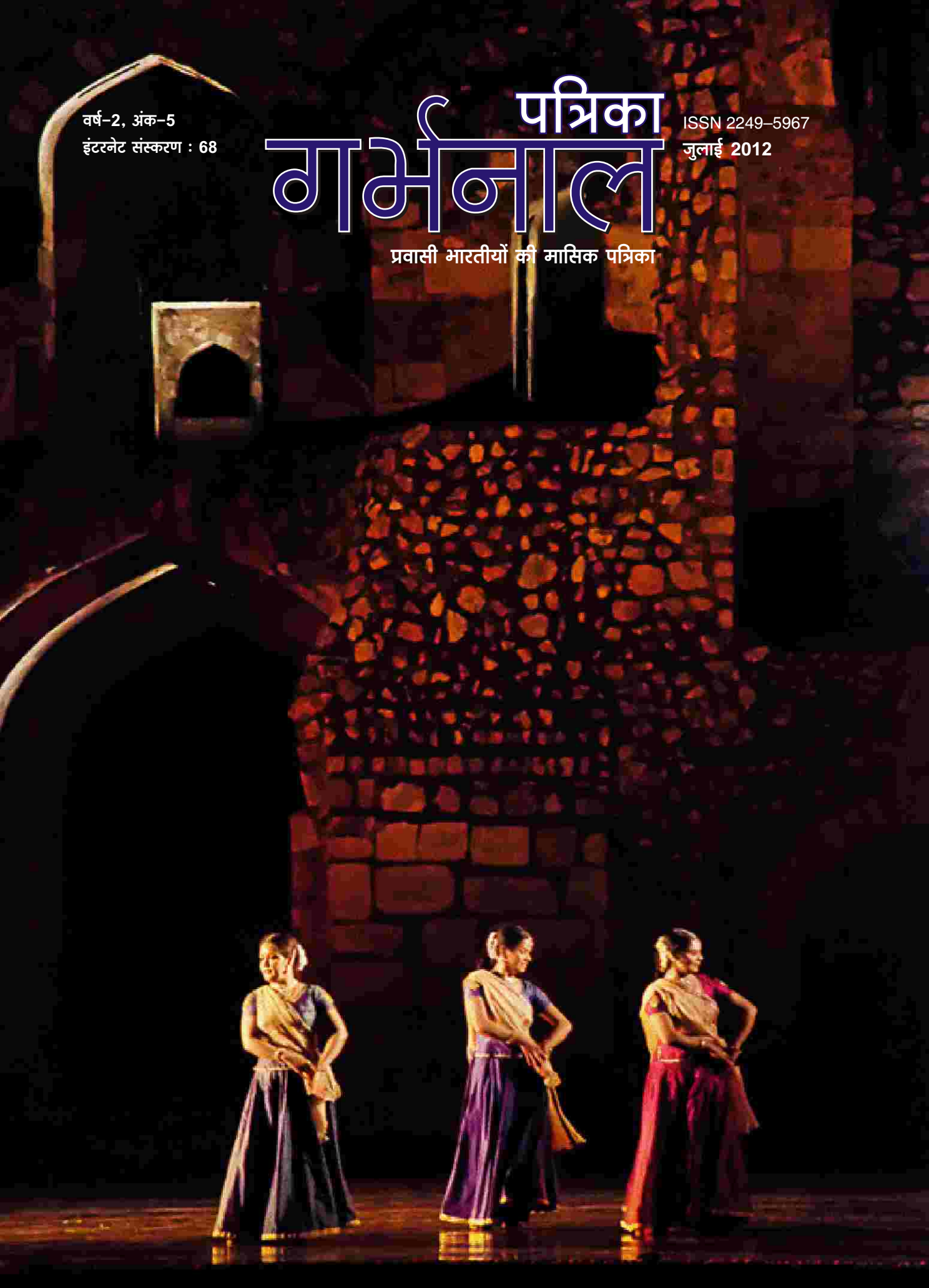

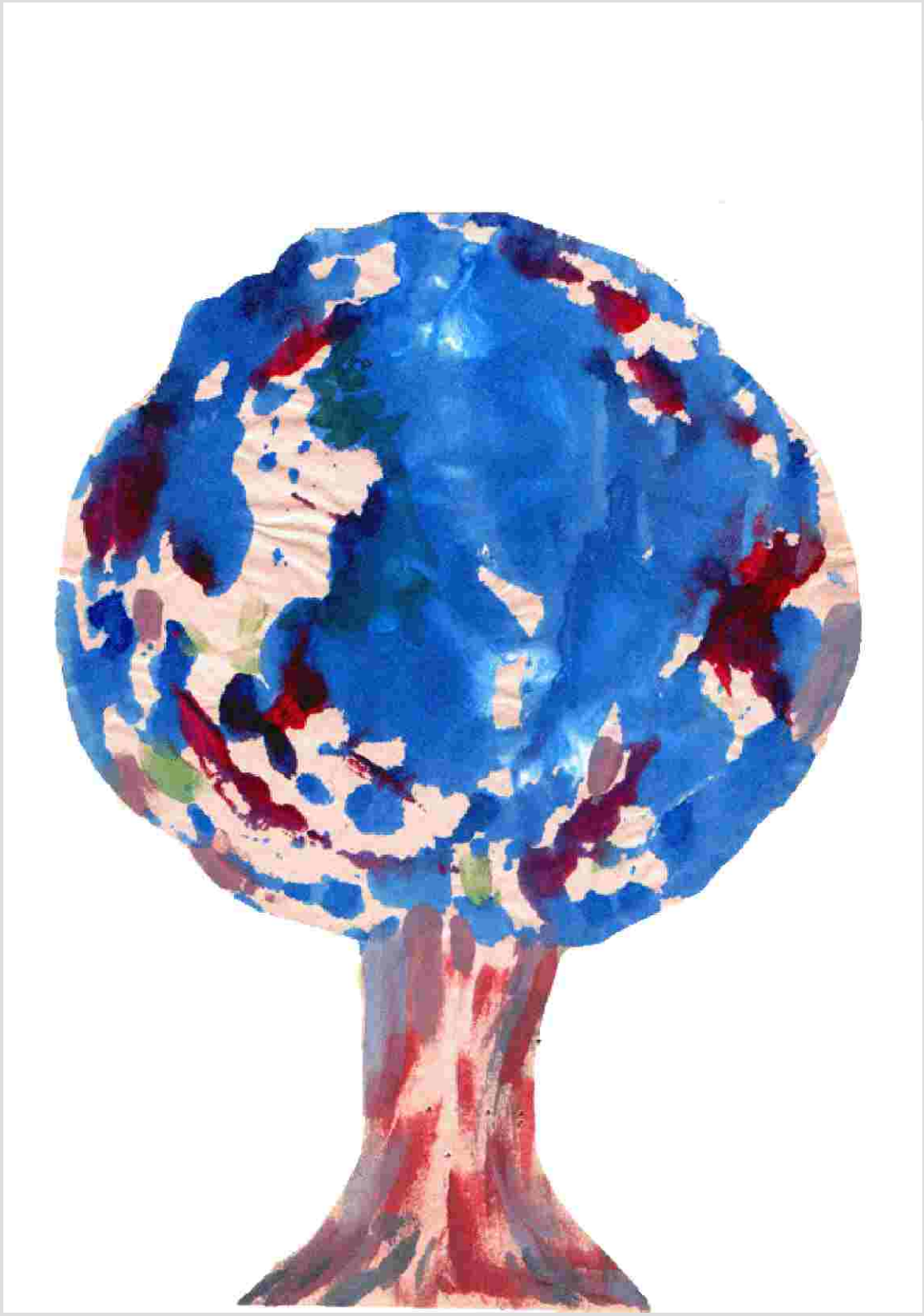

रामानंद शर्मा
ramanand210@gmail.com

अपनी बात

पण्डित अनन्तलाल ठाकुर का सत्संग अल्प दिनों के लिए मिला था मुझे. वे दरभंगा के संस्कृत शोध संस्थान के निर्देशक के पद से सेवानिवृत्त होकर अपने एक आत्मीय के साथ रह रहे थे. मैं वहाँ दो-तीन दिनों के लिए ठहरा था. अति सामान्य दिखनेवाले इस व्यक्ति की बातें सुनते रहना एक अद्‌भुत अनुभव था. अपने बारे में बताते हुए उन्होंने कहा था कि 'मैंने अपने सभी परिजनों को कष्ट दिया है. पिताजी पारम्परिक श्रेणी के प्रकांड पण्डित थे. बड़े-बड़े जमींदार उनके शिष्य थे. वे बीच-बीच में शिष्यों के आमंत्रण पर उनके घर जाया करते थे, मैं छोटा बच्चा था. कभी कभार मैं भी उनके साथ जाता. एक दिन एक शिष्य के बेटे को कहते हुए सुना, टैक्स वसूलने आ गए. मुझे यह टिप्पणी पिताजी की गरिमा के लिए बहुत ही अनुचित और अपमानजनक लगी. तभी मैंने तय किया कि मैं टैक्स नहीं वसूलुँगा. मैं नौकरी करूँगा और आधुनिक पढ़ाई (अंगरेजी) भी करूँगा. सिले वस्त्र पहनूँगा. मेरे इस निर्णय से पिताजी को बहुत कष्ट हुआ. उन्होंने मेरे हाथ से भोजन ग्रहण करना छोड़ दिया. पिताजी को मैंने आजीवन कष्ट दिया. पत्नी ने कहा, तुम तो बस पुस्तकों में ही व्यस्त रहे, मेरी ओर ध्यान देने की फुरसत ही नहीं मिली. पुस्तकें भी तो नहीं पढ़ पाया. कितनी ही पुस्तकें धरी रह गईं. बेटी ने कहा, एक भाई भी तो नहीं दिया, जिसके साथ खेलती. सेवानिवृत्ति के समय चालीस हजार रुपए मिले थे. सो मैंने बेटी के ब्याह के समय उसे दे दिए. सोचा, हम दो पति-पत्नी का खर्च मेरे लिखने की आय से चल जाएगा. ये पैसे इसे हमारे मरने के बाद मिलेंगे तो उस वक्त यह रोती होगी. अभी दे दूँ तो प्रसन्न मनःस्थिति में ग्रहण करेगी.'

विदा होते समय मैंने उन्हें प्रणाम किया तो उन्होंने कहा, 'जा रहे हैं, ठीक है. जाइए, मैं आपसे पुनः मिलने की कामना नहीं करता.' मैं सुनकर सन्न रह गया.

पर तभी उन्होंने एक श्लोक कहकर उसका अनुवाद कर कहा, **'नदी की धारा में लकड़ी के कुन्दे बहा करते हैं. ऐसा होता है कि धारा में बहते हुए दो कुन्दे कुछ देर के लिए एक-दूसरे के साथ हो जाएँ और फिर अलग बहते रहें. ऐसा हो सकता है कि वे फिर कभी न मिलें, पर ऐसा भी हो सकता है कि धारा उन्हें फिर मिलावे, और फिर अलग कर दे.** अगर आपसे पुनः मिलना हुआ तो इतना ही आनन्द होगा जितना इस बार हुआ.' बात युक्तिसंगत लगी. मुझे स्वस्ति हुई, पर सान्त्वना या आश्वस्ति नहीं. जिस अनुभव से आनन्द मिले, उसको फिर से पाने की कामना नहीं करना, आत्मोपलब्धि के एक स्तर पर आए बिना सम्भव नहीं होता.

समय की धारा ने आज से पचास साल पहले दो सालों के लिए हमें असम राज्य के सिलचर में पहुँचाया था. वहाँ कुछ सुधि जनों का अकुण्ठ एवम् अविस्मरणीय स्नेह मिला. वह आवेग आज भी मलिन नहीं हुआ है. एक बार सिलचर की जमीन पर वापस होकर मित्रों से मिलने की कामना मेरी चेतना को आन्दोलित करती रही. पर अपनी सीमाबद्धता के कारण वहाँ जाना सम्भव नहीं हो पाया. सपने देखता रहा था कि इस बार सचमुच सिलचर की जमीन पर हमारे पाँव पड़े हैं.

मेरे छोटे बेटे को, जो दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर है, सिलचर स्थित असम विश्वविद्यालय में गत १५ मार्च को आयोजित एक सेमिनार में जाने का आमंत्रण मिला. मैंने उससे कहा कि अब तो मेरे मित्रों और परिचितों में से शायद कोई जीवित हो, तुम पता करना. श्री अनन्त देव सामाजिक एवम् सांस्कृतिक कर्मी थे, उनकी *दिशारी* नाम की सांस्कृतिक संस्था थी. हो सकता है लोग उन्हें अभी भी जानते हों. और डॉ. कल्याणी दास मिश्र तो अब नहीं ही होंगी, पर उनकी पहचान किसी रूप में अवश्य होनी चाहिए. सिलचर पहुँचकर उसने पता किया तो मालूम हुआ कि श्री अनन्त देव अभी हैं. डॉ. कल्याणी दास मिश्र का निधन २२ साल पहले हो गया है, पर उनके द्वारा स्थापित 'सुन्दरी मोहन सेवा सदन' विशाल रूप धारण कर समाज के वञ्चित तबके की सार्थक सेवा कर रहा है. श्री अनन्त देव तथा सेवा सदन के वर्तमान निर्देशक से हमारे बेटे-बहू ने मुलाकात की. उन्होंने उसे बड़े हुलास के साथ अपने आवास पर आमंत्रित किया. फिर मुझसे फोन पर अनन्त देव जी की बातें हुई. मालूम हुआ कि हमारी मण्डली के बाकी सदस्यों का निधन हो चुका है. उन्होंने अपनी लिखी पुस्तकें और ताजा तस्वीर मेरे बेटे के मार्फत मेरे पास भेजी. मैंने अपने सिलचर प्रवास काल के संस्मरण अपनी ताजा तस्वीर के साथ डाक से उनके पास भेजा. २२ मई को डाक से एक पैकेट मिला जिसमें अनन्त देवजी के पत्र के साथ अखबार की एक प्रति थी. इस अखबार में मेरे द्वारा अनन्त देव जी को प्रेषित संस्मरण प्रकाशित थे. मेरी तस्वीर भी थी. अब मैंने दो पुस्तकें कुरियर के द्वारा उनके पास भेजीं. २९ मई को कुरियर ने पुस्तकों के पैकेट की पहुँच की सूचना दी.

लगा कि समय के प्रवाह में फिर से हमारा साथ कायम हुआ है. लेकिन ३० मई को सिलचर से प्रकाशित दैनिक समाचार-पत्र के इण्टरनेट संस्करण में श्री अनन्त देव के आकस्मिक निधन के समाचार पर नजर पड़ी. मेरे द्वारा भेजी गई पुस्तकें कदाचित् वे नहीं देख पाए. पंडित अनन्तलाल ठाकुर का श्लोक याद आया - **'ऐसा हो सकता है कि वे कभी न मिलें, पर ऐसा भी हो सकता हैं कि धारा उन्हें फिर मिलावे और फिर अलग कर दे.'**

ganganand.jha@gmail.com

पत्रिका गर्भनाल

वर्ष-2, अंक-5 (इंटरनेट संस्करण : 68)
जुलाई 2012

सम्पादकीय सलाहकार
गंगानन्द झा

परामर्श मंडल
वेद मित्र, एम.बी.ई., यू.के.
डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, ऑस्ट्रेलिया
अनिल जनविजय, रूस
अजय भट्ट, बैंकाक
देवेश पंत, अमेरिका
उमेश ताम्बी, अमेरिका
आशा मोर, ट्रिनिडाड
भावना सक्सैना, सूरीनाम
डॉ. अनिल विद्यालंकार, भारत
डॉ. ओम विकास, भारत

सम्पादक
सुषमा शर्मा

तकनीकि सहयोग
डॉ. राजीव यादव, न्यूयार्क

आकल्पन सहयोग
डॉ. बृजेश तिवारी, लखनऊ

कम्पोजिंग
प्रताप परिहार

कानूनी सलाहकार
संजीव जायसवाल

सम्पर्क
डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी,
जे.के. रोड, भोपाल-462023 (म.प्र.) भारत.
ईमेल : garbhanal@ymail.com

आवरण छायाचित्र
गूगल से साभार

प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, जरूरी नहीं है कि सम्पादक इससे सहमत हों. विवाद की स्थिति में केवल भोपाल न्यायालय क्षेत्र ही रहेगा.

>> 4
हिन्दी किसकी है

>> 8
शब्द शक्ति की महिमा

>> 10
हवा में तैरते सुर

>> 16
एक भूला हुआ शब्द

इस अंक में

विचार :	बीनू भटनागर	4
	डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री	8
संस्मरण :	शशि पाधा	10
बातचीत :	मधु अरोड़ा	12
नजरिया :	राजकिशोर	16
खोज-खबर :	कौशलेन्द्र प्रपन्न	18
यात्रा-वृत्तांत :	नीरजा द्विवेदी	21
सद्‌विचार :	सुरेश चन्द्र जैन	27
व्याख्या :	मनोज कुमार श्रीवास्तव	29
वेद की कविता :	प्रभुदयाल मिश्र	34
प्रश्नोत्तरी :	डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता	35
गीता-सार :	अनिल विद्यालंकार	36
पंचतंत्र :		37
महाभारत :		39
अनुवाद :	जीवनानन्द दास	41
	प्रीतिसेन गुप्ता	42
कविता :	अजय भट्ट	43
	स्नेह ठाकुर	44
	प्रवीण पंडित	45
	स्वाति मेलकानी	46
ग़ज़ल :	डॉ. साथी लुधिआनवी	47
शायरी की बात :	नीरज गोस्वामी	48
कहानी :	डॉ. गौतम सचदेव	49
लघुकथा :	डॉ. सुरेश राय	17
	श्रीमती आशा मोर	28
	प्राण शर्मा	38
प्रतिक्रिया :		54
किताब :	डॉ. हरदीप कौर सन्धु	58
आपकी बात :		59

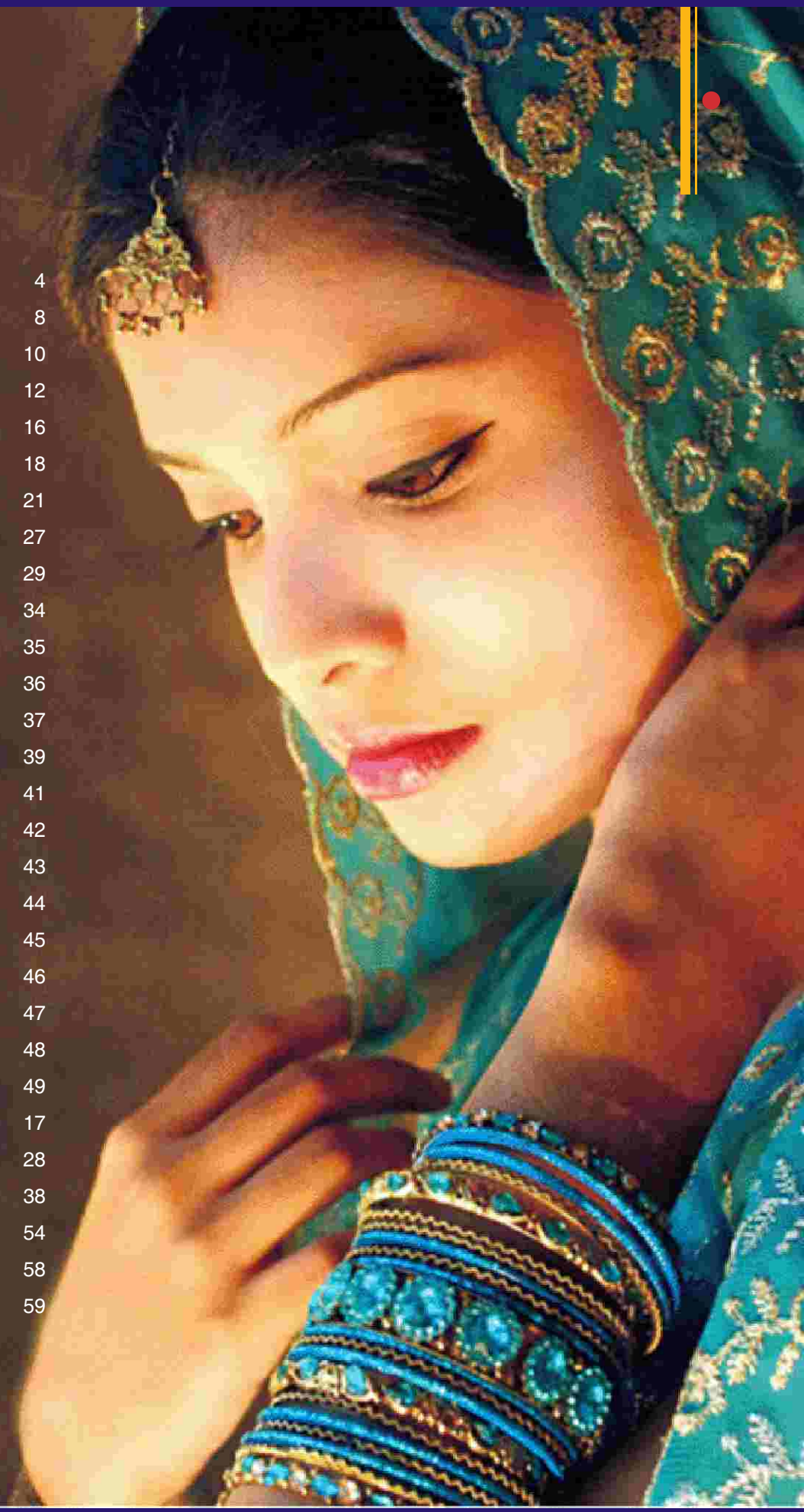

बीनू भटनागर

४ सितम्बर १९४७ को बुलन्दशहर में जन्म. लखनऊ विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में एम.ए. की उपाधि. हिन्दी साहित्य में हमेशा से रुचि रही, लेकिन रचनात्मक लेखन देर से आरंभ किया. नामी पत्र-पत्रिकाओं में कवितायें, आलेख आदि प्रकाशित.

सम्पर्क : ए-१०४, अभियन्त अपार्टमेन्ट, वसुन्धरा एनक्लेव, दिल्ली-११००९६ ईमेल : binu.bhatnagar@gmail.com

विचार

हिन्दी किसकी है

अजीब सा शीर्षक है, अजीब सा प्रश्न है कि हिन्दी किसकी है. पूरे भारत की, सभी हिन्दी भाषियों की या फिर हिन्दी के गिने-चुने विद्वानों की. इसी प्रश्न का उत्तर सोचते-सोचते मैं अपने विचार लिखने का प्रयास कर रही हूँ. स्वतन्त्रता प्राप्त हुए ६४ वर्ष हो चुके हैं, परन्तु हिन्दी को वह सम्मान नहीं मिला जो मिलना चाहिये था. यह स्थिति उन राज्यों की है जिनका जनाधार हिन्दी भाषी है. अहिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी की क्या स्थिति है इस पर विचार करना भी अभी कोई मायने नहीं रखता, जब तक हिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी की जड़ें मज़बूत नहीं होंगी, उसकी शाखायें अहिन्दी भाषी राज्यों मे कैसे फैलेंगी और फलें फूलेंगी. सिर्फ आंकड़े गिनाने से कि कितने राज्यों में किस कक्षा तक हिन्दी पढ़ाई जा रही है या कितने विश्वविद्यालयों में हिन्दी विभाग हैं या विश्व में हिन्दी बोलने वालों की संख्या कितनी है सोचने से कोई लाभ नहीं, जब तक कि भाषा का स्तर न सुधरे और उसका सम्मान न हो. यहाँ मैं केवल भाषा की बात कर रही हूँ साहित्य की नहीं.

हिन्दी भारत की राजभाषा है, जो अत्यन्त समृद्ध है. संस्कृत, पाली और प्राकृत से विकसित होकर अनेक विदेशी भाषाओं के शब्दों को समेटती हुई अपने आधुनिक रूप में पहुंची है.

> हमें अपने बच्चों को "a" से पहले 'अ' सिखाना होगा "cat" , "rat", "dog", से पहले 'चल हट, पनघट पर चल' पढ़ाना होगा.

पिछले कुछ दशकों में देश का माहौल कुछ ऐसा बना कि सबको लगने लगा कि अंग्रेज़ी में शिक्षा प्राप्त किये बिना कोई अच्छी नौकरी नहीं पा सकता. हम अंग्रेज़ी की ओर झुकते चले गये. अंग्रेज़ी माध्यम से शिक्षा देने वाले स्कूलों की संख्या दिनों दिन बढ़ती गई और हिन्दी माध्यम से शिक्षा देने वाले विद्यालयों की शिक्षा का स्तर गिरता चला गया.

हिन्दी मे अंग्रेजी की इतनी मिलावट हो गई कि हम समय को टाइम कहने लगे, इस्तेमाल या उपयोग के स्थान पर यूज़ ज़बान पर बैठ गया. यदि विदेशी शब्द भाषा को समृद्ध बनायें तो उन्हें ग्रहण करने मे कोई हर्ज नहीं है.

अंग्रज़ी में भी बाज़ार, गुरू और जंगल जैसे शब्द समा गये हैं. आजकल जो भाषा बोली जा रही है विशेषकर महानगरों में उसमें हिन्दी और अंग्रेज़ी का इतना सम्मिश्रण हो रहा है जो भाषा को उठा नहीं रहा. हम जो भाषा बोल रहे हैं, वो न हिन्दी का मान बढ़ा रही है न अंग्रेज़ी का. ना ही हिन्दी और अंग्रेज़ी के सम्मिश्रण से किसी नई साफ़ सुथरी भाषा के जन्म के आसार नज़र आ रहे हैं, जिसे कुछ लोग हिंगलिश कहने लगे हैं वह सिर्फ़ खिचड़ी है, वह भी अधपकी.

जैसा कि मैंने कहा अंग्रेजी के शब्द हिन्दी में लेने में कोई हर्ज नहीं है. 'इंटरनैट' को 'अंतरजाल' न कहें पर 'खिलौनों' को तो हिन्दी में 'खिलौना' ही रहने दें 'टौय' क्यों कहें. वाक्य

के आगे पीछे 'यू नो, आई नो' का तड़का लगाकर हिन्दी को विकृत तो न करें. यह हमारी हीन मानसिकता का परिचायक है कि हम एक वाक्य भी बिना अंग्रेज़ी के शब्द पिरोये नहीं बोल सकते. हिन्दी के सरलीकरण की बात जब उठती है तो उसका अर्थ होता है कि उसमें और अंग्रेज़ी मिलाओ. रेडियो, टेलिविजन और पत्रिकायें भी इसी तरह की भाषा का प्रयोग कर रहे हैं. किसी महिला पत्रिका के लेख का शीर्षक होगा 'ब्यूटी टिप्स', हिन्दी फ़िल्म का नाम होगा 'वन्स अपौन ए टाइम इन मुंबई'. अंग्रेज़ी की प्रतिष्ठित पत्रिका 'इन्डिया टुडे' ने जब अपना हिन्दी संस्करण निकाला तो अंग्रेजी पत्रिका की

> *छात्र हिन्दी को बोझ समझने लगे हैं. यह तो होना ही था, जब आकार और प्रकार में पाठ्यक्रम उनकी आयु और रुचि के अनुकूल नहीं है. हमने अन्य विषयों के साथ हिन्दी का भी इतना वृहद पाठ्यक्रम बच्चों पर लाद दिया है कि उनमें उसके प्रति अरुचि पैदा हो गई है.*

लोकप्रियता को भुनाने के लोभ मे उन्हें यह आवश्यक नहीं लगा कि हिन्दी पत्रिका का नाम तो हिन्दी में ही होना चाहिये. उन्होंने उसका नाम 'इन्डिया टुडे' ही रहने दिया.

अंग्रेज़ी क्या किसी भी भाषा से मेरा कोई दुराग्रह नहीं है. हिन्दी को बढ़ावा देने के लये अक्सर कहा जाता है कि उच्च शिक्षा का माध्मम हिन्दी होना चाहिये. इसके लिये चीन, जापान और रूस सहित कई देशों के नाम लिये जाते हैं, परन्तु छात्रों को यदि उच्च माध्यमिक स्तर तक हिन्दी पढ़ने-लिखने का व्यावाहरिक ज्ञान नहीं होगा तो उन्हें उच्च शिक्षा हिन्दी माध्यम मे कैसे दी जा सकती है.

इसके लिये तो प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च माध्यमिक विद्यालयों मे हिन्दी स्तर और पाठयक्रम को व्यावाहरिक बनाना पड़ेगा. यहाँ मैं एक रोचक उदाहरण देना चाहूँगी. एक बार मैंने अपनी कुछ रचनायें लिफ़ाफ़े में रखकर पता भी हिन्दी में लिख दिया और अपने पति से कहा कि उसे कोरियर करवा दें. वे कहने लगे कि कम से कम मुझे पता तो इंगलिश में लिखना चाहये था, जो पत्र सही जगह पर पहुंच जाय, कोरियर वाले ज़्यादा पढ़े लिखे नहीं होते. इसका अर्थ तो यही हुआ कि एक कम पढ़ा लिखा शहरी व्यक्ति इंगलिश तो पढ़ लेगा पर हो सकता है उसे हिन्दी पढ़ने में दिक्कत हो. ये स्थिति किसी अहिन्दी भाषी राज्य की नहीं है राजधानी दिल्ली की है. संभव है कि बहुत छोटे शहरों मे ऐसी स्थिति न हो, परन्तु उत्तर भारत के अन्य बड़े शहरों मे भी कुछ ऐसा ही हाल है. दुख होता है, पर सत्य को स्वीकार तो करना ही पड़ेगा, तभी तो कुछ प्रयास किया जा सकेगा हिन्दी को सम्मान दिलाने की दिशा में. छात्र हिन्दी को बोझ समझने लगे हैं. यह तो होना ही था, जब आकार और प्रकार में पाठ्यक्रम उनकी आयु और रुचि के अनुकूल नहीं है. हमने अन्य विषयों के साथ हिन्दी का भी इतना वृहद पाठ्यक्रम बच्चों पर लाद दिया है कि उनमें उसके प्रति अरुचि पैदा हो गई है. इसमें उनका कोई दोष नहीं है. जो भाषा वो सुनते बोलते हैं, उसमें और पाठ्यक्रम की पुस्तकों में प्रयुक्त भाषा में ज़मीन आसमान का अन्तर है. यह भी सच है कि बोलचाल की भाषा लिखित भाषा से थोड़ी अलग होती है पर यहाँ इस अंतर की खाई बहुत बड़ी है. इस अंतर को कम करना होगा.

आरंभिक वर्षों में बच्चों को अंग्रेज़ी से पहले हिन्दी सिखानी चाहिये. तीसरी या चौथी कक्षा से पहले अंग्रेज़ी सिखाना उचित नहीं होगा. इस आयु तक बच्चे का मस्तिष्क दो भाषाओं को एक साथ ग्रहण करने में सक्षम नहीं होता. माता पिता को बच्चों से सरल हिन्दी बोलनी चाहिये. कठिन शब्दों का प्रयोग न करें पर कुत्ते को कुत्ता ही रहने दें डौगी क्यों कहें, गुड़िया को भी डॉल कहने की ज़रूरत नहीं है. जब अंग्रेज़ी सीखेंगे तो इन शब्दों को भी सीख लेंगे. शुरू से ही हिन्दी में अंग्रेजी की मिलावट करना क्यों सिखाया जाय. हिन्दी को मातृभाषा की तरह और अंग्रेज़ी को विदेशी भाषा की तरह सिखाने पर जोर होना चाहिये. यदि इसका उल्टा होता है जो कि हो ही रहा है तो हमारे बच्चे दोनों ही भाषाओं से न्याय नहीं कर पायेंगे.

मातृभाषा सीखने के लिये व्याकरण या भाषाविज्ञान सीखना ज़रूरी नहीं है. यदि बच्चों ने माता-पिता से स्वच्छ भाषा सुनी होगी तो वे आयु के अनुसार सरल विषयों को पढ़ने, लिखने और समझने लगेंगे. उनके पाठ्यक्रम में आरंभिक वर्षों में सचित्र पुस्तकें होनी चाहिये, जिनमें भालू बन्दर की कहानियाँ हों जो उन्होंने अपनी नानी और दादी से सुनी थीं. धीरे धीरे भाषा का स्तर बढ़े तो शिक्षक उन्हें नये शब्दों के अर्थ बतायें. हिन्दी के उच्च स्तरीय साहित्यकारों की गूढ़ विषयों पर लिखी गई रचनाओं को बच्चे आठवीं-दसवीं कक्षा तक भी पचा नहीं पायेंगे. वास्तविक स्थिति यह है कि

> हिन्दी के उत्थान के लिये जो सरकारी प्रयास हुए हैं वह दिशाहीन हैं. तकनीकी शब्दों के कुछ अनुवाद हो जाते हैं, जो ज़्यादातर व्यावहारिक नहीं होते. हर जगह दोनों भाषाओं के प्रयोग की बात होती है पर व्यवहार में सरकारी काम काज की भाषा हिन्दी नहीं है.

हमने उन पर ढेर सारे विलोम शब्द, पर्यायवाची शब्द, मुहावरे और लोकोत्तियाँ रटने का बोझ भी डाल दिया है, जिससे विषय के प्रति अरुचि पैदा होती है और कुछ नहीं. जब पाठ में नये शब्द आयेंगे और शिक्षक उनको उनका अर्थ बतायेंगे तो स्वतः उनका शब्दकोष बढ़ेगा. यदि उन्होंने अपनी नानी दादी की मुहावरेदार भाषा सुनी होगी और आयु के अनुसार कहानियाँ पढ़ेंगे तो मुहावरे भी अपने आप समझ मे आने लगेंगे, परन्तु यही नहीं दसवीं कक्षा तक आते-आते तो उन पर वाक्य संश्लेषण और वाक्य विश्लेषण के साथ भाषा विज्ञान का बोझ भी डाल दिया गया है. अब परीक्षा उत्तीर्ण करनी है तो जैसे तैसे बाजारू कुँजियों से रट रटा कर ली जाती है, पर अधिकतर बच्चे दसवीं के बाद हिन्दी से तौबा कर लेते हैं वह उसका सम्मान करना भी भूल जाते हैं. अपनी मातृभाषा को हीन समझने लगते हैं. इससे दुर्भाग्य पूर्ण किसी स्वतन्त्र राष्ट्र की भाषा के लिये और क्या हो सकता है.

बारहवीं कक्षा तक हिन्दी, हिन्दी भाषी राज्यों मे अनिवार्य होनी चाहिये. उन्हें गूढ, गहन और कठिन साहित्य पढ़ाने की आवश्यकता नहीं है. किशोरों की रुचि के अनुसार खेलकूद से संबन्धित लेख, सरल कहानियाँ, प्रेरक प्रसंग, देश प्रेम वाली कवितायें और प्रारंभिक व्याकरण ही पाठ्यक्रम मे होनी चाहिये. निबन्ध लेखन और परिच्छेद लेखन भी आवश्यक है पर यहाँ भी ज़रूरी है कि बच्चों को अपनी भाषा लिखने के लिये प्रोत्साहित किया जाय रट कर उगलने के लिये नहीं. सब बच्चे हिन्दी साहित्य पढ़ें यह तो ज़रूरी नहीं है. कुछ इंजीनियर कुछ डॉक्टर वकील या कुछ और बनेंगे. हिन्दी में रुचि बनी रहेगी तो कम से कम हिन्दी पढ़ने-लिखने में वो अटकेंगे तो नहीं. हिन्दी में अच्छी पुस्तकें और पत्रिकायें पढ़ना चाहेंगे. इन्ही में से भविष्य में कोई साहित्यकार भी उभरेगा. यदि हिन्दी का व्यवाहरिक ज्ञान सबको होगा तो समय आने पर उच्च शिक्षा का माध्यम हिन्दी करने पर विचार हो सकता है.

आजकल जहाँ विभिन्न विषयों में ९०-९५ प्रतिशत अंक पाकर भी विद्यार्थी अपनी पसन्द के कॉलेज में पसन्द के विषय में प्रवेश पाने के लिये संघर्ष करते रह जाते हैं, वहीं हिन्दी मे ६०-६५ अंक लेकर अच्छे कॉलेज में दाख़िला मिल जाता है. ज़ाहिर है वो मजबूरी में हिन्दी पढ़ेंगे, रुचि से हिन्दी पढ़ने वालों की संख्या तो बहुत कम होती है. स्नातक होना है तो हिन्दी ही सही. डिग्री भी रटरटा कर मिल जाती है, ऐसे विद्यार्थियों का हिन्दी का ज्ञान फिर भी शून्य पर टिका रहता है. मैं दिल्ली विश्वविद्यालय से बी.ए. आनर्स हिन्दी पास किये ऐसे लोगों को जानती हूँ जिन्हें 'सामंजस्य', 'समन्वय', 'विकल्प' या 'दीर्घ' जैसे मामूली शब्दो के अर्थ नहीं मालूम. वे यह भी भूल चुके होंगे कि 'कामायनी' या 'साकेत' किस कवि ने लिखे थे. उन्होंने तो कुँजियों से रटा था, परीक्षा गई बात गई.

हिन्दी के साथ विकृतियाँ कई प्रकार से हो रहीं हैं. पढ़ा-लिखा शहरी तथाकथित संभ्रान्त वर्ग अंग्रेजी की मिलावट करते नहीं थकता, दूसरी ओर एक वर्ग बिना गालियों के बात नहीं कर सकता. ये शब्द गंदे हैं, भाषा का रूप बिगाड़ रहे हैं, इनको भाषा से बाहर निकालना सभ्य समाज के लिये ज़रूरी है. कुछ फिल्मों में इनका धड़ल्ले से प्रयोग हुआ है. निर्माता कहते हैं कि उन्होंने सच्चाई दिखाई है. ऐसी भाषा बोली जाती है. क्या यह गंद युवाओं को परोसना ज़रूरी था. अपने आर्थिक लाभ के लिये इस प्रकार की भाषा का सिने माध्यम से प्रचार करना अनुचित है. फ़िल्मों की नकल तो युवा बहुत करते हैं.

क्षेत्रीय भाषाओं के प्रभाव स्वरूप से भी कुछ अशुद्धियाँ भाषा में आ जाती हैं, बंगला मे कर्ता के लिंग से क्रिया प्रभावित नहीं होती है, पर हिन्दी मे होती है, इसलिये 'राम आती है' और 'सीता जाता है' हो जाता है. पंजाबी मे केवल 'तुसी' होता है, हिन्दी में तू, तुम और आप भी होता है, तीनों के साथ क्रिया का रूप बदल जाता है. 'तू देदे', 'तुम देदो' और 'आप दे दीजिये' होना चाहिये, अक्सर लोग 'आप देदो' या 'आप लेलो' कहते हैं जो सही नहीं है. कारक की भी त्रुटियाँ बहुत होती हैं, 'मैंने जाना है' सही नहीं है 'मुझे जाना है' सही है. शब्दों के चुनाव में भी कुछ सामान्य ग़लतियाँ होती हैं, जैसे भोजन 'परोसा' जाता है 'डाला' नहीं जाता, कपड़े भी 'पहने' जाते हैं 'डाले' नहीं जाते. इन त्रुटियों को दूर करने के लिये छात्रों पर व्याकरण का बोझ डालना उचित नहीं है, बस शिक्षक ख़ुद सही बोलें और बच्चे ग़लती करें तो उसे सुधार दें. धीरे-धीरे वे सही बोलना और लिखना सीख जायेंगे. अच्छी किताबें पढ़ने से भी भाषा सुधरती है. कम से कम जिन बच्चों की मातृभाषा हिन्दी है, उन्हें तो सही साफ सुथरी भाषा बोलना, पढ़ना और समझना आना ही चाहिये.

इन छोटी-छोटी त्रुटियों का बोलचाल की भाषा में ज़्यादा महत्व भले ही इतना न हो पर लिखने मे ये ग़लतियाँ खटकती हैं. खेद का विषय है, कि भले ही व्याकरण का विस्तृत पाठ्यक्रम विद्यालयों में है, फिर भी ख़ुद शिक्षक ही शुद्ध भाषा नहीं बोलते. शुद्ध भाषा से मेरा तात्पर्य क्लिष्ट या कठिन भाषा से बिल्कुल नहीं है. मेरा अपना अनुभव है कि हिन्दी भाषी क्षेत्रों में भी बहुत से शिक्षकों का न तो उच्चारण सही होता है और ना ही वो व्याकरण सम्मत भाषा का प्रयोग करते हैं. शिक्षकों का चयन करते समय केवल उनकी डिग्रियाँ देख लेना ही पर्याप्त नही है, उनका उच्चारण और लेखन भी देखना आवश्यक है. शिक्षकों की भाषा अच्छी होगी तो छात्रों की भाषा अवश्य सुधरेगी.

> *हिन्दी के उत्थान के लिये कुछ चुनी हुई अच्छी पत्रिकाओं को सरकार से कुछ आर्थिक संरक्षण मिलना चाहिये नहीं तो विज्ञापनों के अभाव में वे दम तोड़ देंगी.*

पाठ्यक्रम के अतिरिक्त छात्रों व सभी आयुवर्ग के लिये हिन्दी में अच्छी पत्रिकायें उपलब्ध होनी चाहिये. यहाँ भी एक विषम चक्र है. हिन्दी में पाठकों की निरंतर कम होती रुचि के कारण पत्रिकाओं को विज्ञापन नहीं मिलते, उनके अभाव में किसी पत्रिका को चला पाना आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक कठिन होता है. तथापि हिन्दी में कई पत्रिकायें हैं, कुछ साहित्यिक कहलाने के लोभ में पुराने प्रसिद्ध लेखकों और कवियों की समीक्षायें प्रकाशित करती हैं या साहित्य जगत के समाचार छापते रहती हैं. कुछ लाइफ़स्टाइल मैगज़ीन हैं जो फ़ैशन जगत की जानकारी देती हैं या बाज़ार में उपलब्ध मंहगे-मंहगे सामान की चर्चा करती हैं. ऐसी पत्रिकायें जो चिंतन के लिये प्रेरित करें बहुत कम हैं. इंटरनेट पर कुछ अच्छी पत्रिकायें हैं, परन्तु प्रिन्ट में स्टैन्ड पर मिलने वाली पत्रिकाओं की बहुत कमी है.

पत्रिकाओं के महत्व को हम नकार नहीं सकते. नये लेखकों की रचनायें कोई भी प्रकाशक प्रकाशित करने का जोखिम नहीं उठाना चाहता. यह सर्वविदित है कि जाने-माने अधिकतर साहित्यकार अपने प्रारंभिक दिनों में किसी न किसी पत्रिका से जुड़े थे. पत्रिकाओं के लिये लिखना किसी का व्यवसाय नहीं हो सकता इसलिये आरंभ के दिनों में उन्हें ग़रीबी से जूझना पड़ा था. पत्रिकाओं से पहचान बनने के बाद ही उनकी पुस्तकें प्रकाशित हुईं. हिन्दी में साठ के दशक के बाद कोई बहुत बड़ा साहित्यकार नहीं उभरा, जिसकी चर्चा अंतर्राष्ट्रीय क्या राष्ट्रीय स्तर पर हुई हो, जिसकी रचनायें बहुत-सी भाषाओं में अनुवादित हुई हों. ऐसा भी नहीं है कि १२० करोड़ की जनसंख्या वाले इस देश मे कोई अच्छा लिख ही नहीं रहा होगा, पर ऐसी पत्रिकायें कहाँ हैं जो उन्हें उनकी पहचान बनाने में मदद कर सकें. पिछले कुछ दशकों में जो पुस्तकें छपी हैं, वह उन लोगों की हैं जो या तो किसी विश्वविद्यालय में व्यख्याता हैं या किसी उच्च पद पर हैं या किसी बड़ी संस्था से जुड़े हैं. केवल प्रतिभा पर आजकल पुस्तकें छापने वाले प्रकाशक कहाँ है. यदा-कदा कोई अपवाद हो सकते हैं. कुछ भारतीय लेखकों जैसे अरुन्धति राय, झुम्पा लहरी और चेतन भगत ने इंगलिश मे लिखकर विश्व में अपनी एक पहचान बनाई है.

हिन्दी के उत्थान के लिये जो सरकारी प्रयास हुए हैं वह दिशाहीन हैं. तकनीकी शब्दों के कुछ अनुवाद हो जाते हैं, जो ज़्यादातर व्यावाहरिक नहीं होते. हर जगह दोनों भाषाओं के प्रयोग की बात होती है पर व्यवहार में सरकारी काम काज की भाषा हिन्दी नहीं है. हिन्दी अकादमी एक पत्रिका निकाल देती है जिसमें जनमानस की रुचि तो होने से रही. हिन्दी दिवस पर कुछ भाषण हो जाते हैं और बात वहीं की वहीं रह जाती है.

कुछ लोग जो हिन्दी में रुचि रखते हैं, अपने व्यक्तिगत स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों में साहित्य सभाएँ कर लेते हैं. एक-दूसरे की रचनाओं को सुनने और पढ़ने का अवसर मिल जाता है, उन पर टिप्पणियाँ भी होती है, विचारों का आदान-प्रदान हो जाता है. इन प्रयासों से राषट्रीय स्तर पर कोई बदलाव लाना मुमकिन नहीं है.

हिन्दी के उत्थान के लिये कुछ चुनी हुई अच्छी पत्रिकाओं को सरकार से कुछ आर्थिक संरक्षण मिलना चाहिये नहीं तो विज्ञापनों के अभाव में वे दम तोड़ देंगी. उभरते हुए लेखकों को भी कुछ आर्थिक सहायता मिले और प्रकाशन मे मदद मिले तो अच्छा होगा.

शिक्षा के स्वरूप और पाठ्यक्रम में मूलभूत परिवर्तन करने होंगे. हिन्दी को पूरे राष्ट्र की संपर्क भाषा और राष्ट्र भाषा के रूप में सम्मानित करने के लिये हिन्दी भाषी लोगों को अपनी सोच बदल कर पहला कदम बढ़ाना होगा. अपने बच्चों को "a" से पहल 'अ' सिखाना होगा "cat" , "rat", "dog", से पहले 'चल हट, पनघट पर चल' पढ़ाना होगा.■

डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री
सम्पर्क : पी/१३८, एम.आई.जी., पल्लवपुरम-२, मेरठ २५०११०
ईमेल : agnihotriravindra@yahoo.com

विचार

शब्द शक्ति की महिमा

कहा गया है कि शब्द में बड़ी शक्ति होती है. अंग्रेजी कहावत भी प्रसिद्ध है, Pen is mightier than sword. इसमें pen लिखित शब्द का ही तो प्रतीक है. संस्कृत में तो यहाँ तक कहा गया है कि 'एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गलोके कामधुक् भवति' एक शब्द को ही अगर ठीक से जान लिया जाए, उसका ठीक से प्रयोग किया जाए तो सारी कामनाएं पूरी हो सकती हैं. शायद इसीलिए कुछ लोग किसी शब्द/मंत्र आदि का देर तक जाप करते हैं या कागज पर प्रतिदिन उसे बार-बार लिखते हैं, कुछ लोग १०१ बार तो कुछ लोग १००१ बार लिखते हैं और कुछ लोग उसका कीर्तन ही करते हैं. इससे उस शब्द/मन्त्र की शक्ति बढ़ी या उन्हें कोई लाभ हुआ - इसका तो मुझे कोई प्रमाण नहीं मिला, पर हाँ, ऐसे अनेक लोग मिले हैं जिनके जीवन की दिशा बदलने में किसी विद्वान के मौखिक अथवा लिखित शब्दों ने विशेष भूमिका निभाई. स्वामी दयानंद सरस्वती से शंका समाधान करने के बाद मुंशीराम का (जो बाद में स्वामी श्रद्धानंद बने) या रामकृष्ण परमहंस से वार्तालाप करने के बाद नरेन्द्र नाथ दत्त का (जो बाद में स्वामी विवेकानंद बने) जीवन बदलने के उदाहरण हम सबके सामने हैं. अनेक धार्मिक ग्रंथों ने तो लोगों के जीवन को बदला ही है, अन्य प्रकार की पुस्तकों ने भी ऐसा करिश्मा किया है. जान रस्किन की अर्थशास्त्र संबंधी पुस्तक 'अन टु दिस लास्ट' (१८६२) से गाँधी जी का परिचय १९०४ में हुआ और इसी पुस्तक ने गाँधी जी को 'सर्वोदय' का विचार दिया (गाँधी जी ने सर्वोदय नाम से ही इस पुस्तक का गुजराती में अनुवाद १९०८ में किया था) एवं इसी पुस्तक ने उन्हें फोनिक्स आश्रम की स्थापना की प्रेरणा दी. कथा, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि को हम प्रायः मनोरंजन की ही सामग्री मानते हैं, पर इस सामग्री में भी ऐसे रत्न छिपे हुए हैं जिन्होंने गंभीर पाठकों का जीवन बदल दिया. ऐसा ही एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है.

चेन्नई (तत्कालीन मद्रास) में १८ जुलाई १८७८ को जन्मे एम. वेंकटसुब्बा राव एक प्रतिभाशाली विद्यार्थी थे. मद्रास क्रिश्चियन कालेज से ग्रेजुएशन करने के बाद उन्होंने वकालत की परीक्षा पास की और उस समय के एक प्रसिद्ध वकील सर सी.वी. कुमारस्वामी शास्त्री के सहायक के रूप में लगभग एक वर्ष काम करने के बाद जुलाई १९०४ में अपने एक सहपाठी राधाकृष्णैया के साथ अपनी फर्म बनाकर स्वतंत्र रूप से प्रैक्टिस शुरू की. शीघ्र ही उनकी प्रसिद्धि एक योग्य-विद्वान वकील के रूप में होने लगी. उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर जब उन्हें १९२१ में मद्रास हाईकोर्ट का जज बनाया गया तो यह घटना दो दृष्टियों से विशेष बन गई. पहली तो यह कि स्वतंत्र वकालत करने वाले वे पहले व्यक्ति थे जिसे जज बनाया गया और दूसरी यह कि अन्य जजों की तुलना में वे उस समय सबसे कम उम्र के जज थे. बाद में १९३९ में मद्रास हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस के रूप में वे रिटायर हुए. इसके बाद हैदराबाद के निजाम ने भी उन्हें बरार का एजेंट बनाकर उनकी योग्यता का लाभ उठाया.

जज बन जाने के बाद १९२२ में उन्होंने अंडाल अम्मा नामक जिस युवती से विवाह किया वह यों तो संपन्न परिवार की महिला थीं, सुशिक्षित थीं जो उस ज़माने में बड़ी बात थी, पर कम उम्र में ही विधवा हो गई थीं. हमारे समाज में विधवा की स्थिति तब कैसी होती थी, यह सर्व विदित है. फिर तत्कालीन समाज में और वह भी उच्च वर्ग में विधवा-विवाह करना बहुत बड़ा क्रांतिकारी कदम था. वेंकटसुब्बा राव साहसी व्यक्ति थे, समाज सुधार के बहुत बड़े समर्थक थे. स्त्रियों की दुर्दशा दूर करने के लिए तो मानों वे कृतसंकल्प थे.

अतः इस विवाह के लिए वे स्वयं आगे आए.

वे अध्ययनशील भी थे और उनकी रुचि कानून के अलावा साहित्य में भी थी. देश में उन दिनों कहानीकार के रूप में प्रेमचंद की ख्याति फैल रही थी. उनके साहित्य का अन्य भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद किया जा रहा था. प्रेमचंद की एक कृति का तमिल अनुवाद वेंकटसुब्बा राव ने पढ़ा. उस पुस्तक ने उनके दिल-दिमाग में हलचल पैदा कर दी . उन्होंने अपनी पत्नी को भी वह पुस्तक पढ़ने के लिए प्रेरित किया. उसे पढ़ने पर उनकी पत्नी भी सोच में डूब गईं. आपस में विचार-

> वेंकटसुब्बा राव और अंदाल अम्मा को इस उपन्यास का अंत बहुत पसंद आया. स्त्रियों की दुर्दशा को सुधारने का उन्हें यह एक अच्छा उपाय लगा. उन्होंने १९२८ में जिस संस्था की स्थापना की उसका नाम 'सेवा सदन' ही रखा.

विमर्श करके उन्होंने एक संस्था की स्थापना करने का निश्चय किया. उस संस्था ने मद्रास के सामाजिक जीवन की भी दिशा बदल दी. प्रेमचंद की उस पुस्तक का नाम था 'सेवा सदन'.

जो पाठक सेवा सदन से परिचित न हों उन्हें बता दूँ कि प्रेमचंद का यह उपन्यास अनमेल विवाह की समस्याओं पर आधारित है जो उन दिनों बहुत प्रचलित था. नायिका अपने अनमेल विवाह से त्रस्त है, पारिवारिक समस्याओं से जूझ रही है. उसका असंतोष उसे इस कदर तोड़ देता है कि वह वेश्यावृत्ति अपनाने में भी संकोच नहीं करती, पर शीघ्र ही उसे अपनी भूल का अहसास होता है और फिर वह अपनी भूल का प्रायश्चित करते हुए एक ऐसा अनाथालय खोलती है जहां वेश्याओं की बच्चियां रखी जाएँ. उन्हें शिक्षा पाने की सुविधा मिले ताकि वे समाज में सम्मानजनक रूप से जी सकें और उनके इस गर्त में गिरने की संभावना न रहे. इस अनाथालय का ही नाम है 'सेवा सदन'.

यह उपन्यास प्रेमचंद ने पहले उर्दू में 'बाज़ार-ए-हुस्न' नाम से लिखा था. आर्य समाज उन दिनों समाज सुधार का सबसे बड़ा आन्दोलन था. प्रेमचंद जब उसके संपर्क में आए तो एक ओर तो उन्हें हिंदी के महत्व का अनुभव हुआ और दूसरी ओर सामाजिक समस्याओं के केवल चित्रण नहीं, बल्कि उनके समाधान की ओर भी उनका ध्यान गया. परिणामस्वरूप उन्होंने इसे हिंदी में 'सेवा सदन' के नाम से लिखा और कथानक में भी परिवर्तन कर दिया. उर्दू उपन्यास दुखांत था, उसमें नायिका अंत तक वेश्या ही बनी रहकर पछताती रहती है. वहीं हिंदी उपन्यास में नायिका को सन्मार्ग पर लाकर उसे सुखान्त बना दिया है. संयोग से छपकर यह उपन्यास हिंदी में पहले ही १९१९ में आ गया जबकि उर्दू में पांच वर्ष बाद १९२४ में आया. हिंदी उपन्यास से प्रेमचंद को आर्थिक लाभ भी हुआ. उन्हें रायल्टी के रूप में ४५० रु. मिले, जबकि उर्दू उपन्यास से बहुत जद्दो-जहद करके २५० रु. ही मिल पाए.

वेंकटसुब्बा राव और अंदाल अम्मा को इस उपन्यास का अंत बहुत पसंद आया. स्त्रियों की दुर्दशा को सुधारने का उन्हें यह एक अच्छा उपाय लगा. उन्होंने १९२८ में जिस संस्था की स्थापना की उसका नाम 'सेवा सदन' ही रखा. स्त्रियों की शिक्षा की व्यवस्था करना और आश्रयहीन स्त्रियों को आश्रय एवं सुरक्षा प्रदान करना इस संस्था का मुख्य उद्देश्य बनाया. इस कार्य के लिए उन्होंने अपनी कई एकड़ ज़मीन तथा महलनुमा कोठी उसे दान कर दी. उनकी पत्नी ने भी अपनी सारी जायजाद, अपने गहने, हीरे-जवाहरात सब कुछ उस सेवा सदन के नाम लिख दिया. इस युगल की इन सेवाओं का सम्मान जनता ने तो किया ही, सरकार ने भी किया. अँगरेज़ सरकार ने वेंकटसुब्बा राव को १९३६ में 'सर' की उपाधि से विभूषित किया तो आज़ादी मिल जाने के बाद सरकार ने अंडाल वेंकटसुब्बा राव के योगदान की सराहना करते हुए उन्हें १९५७ में 'पद्म भूषण' से सम्मानित किया.

'मद्रास सेवा सदन' की जब लोकप्रियता बढ़ने लगी तो फिल्मकारों का भी ध्यान इस ओर गया. फिल्म निर्देशक/निर्माता के. सुब्रमण्यम ने मद्रास युनाइटेड आर्टिस्ट कारपोरेशन के बैनर तले 'सेवा सदनम' नाम से १९३८ में फिल्म बनाई जिसके कथा लेखक के रूप में प्रेमचंद का नाम दिया गया. तमिल फिल्म इंडस्ट्री में यह युगांतरकारी फिल्म सिद्ध हुई. यद्यपि रूढ़िवादी लोगों ने इसका जमकर विरोध किया, पर फिल्म ज़बरदस्त रूप से सफल हुई. एस. सुब्बुलक्ष्मी (१९१६-२००४) यों तो गायिका थीं, पर उन्होंने कुछ विशिष्ट फिल्मों में यादगार अभिनय भी किया. सेवा सदनम ही वह फिल्म थी जिससे उन्होंने अपने फ़िल्मी कैरियर की शुरुआत की थी.

वेंकटसुब्बा राव और अंडाल अम्मा ने जो स्वप्न देखा था, वह 'मद्रास सेवा सदन' (और बेंगलुरु में भी 'अभय निकेतन') के रूप में साकार हुआ. जहाँ आज यह धर्मार्थ संस्था के रूप में रजिस्टर्ड है और इसके अंतर्गत एक दर्जन से अधिक संगठन नारी उत्थान एवं समाज कल्याण के लिए कार्य करके न केवल उनकी यशःकीर्ति की पताका फहरा रहे हैं, बल्कि प्रेमचंद का भी अद्वितीय स्मारक बन गए हैं.

साहित्य समाज को कैसे प्रभावित कर सकता है, यह इसका जीता-जागता उदाहरण है. शब्द शक्ति की यह अनूठी मिसाल है. ■

शशि पाधा

जम्मू में जन्म. जम्मू-कश्मीर विवि से एम.ए. हिन्दी, एम.ए. संस्कत तथा बी.एड. की शिक्षा. १९६७ में सितार वादन में राज्य का प्रथम पुरुस्कार. आकाशवाणी जम्मू के नाटक, परिचर्चा, वाद-विवाद आदि कार्यक्रमों में भाग लिया तथा १६ वर्ष तक भारत में हिन्दी तथा संस्कृत भाषा का अध्यापन किया. लेख, कहानियां एवं काव्य रचनाये 'पंजाब केसरी' एवं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपती रही. २००२ में यह यू.एस.ए. आईं. जहाँ नार्थ केरोलिना के चैपल हिल विवि में हिन्दी का अध्यापन कार्य किया. इनकी रचनाएं 'प्रवासिनी के बोल' एवं 'हिन्दी चेतना' में प्रकाशित हुईं. प्रकाशित काव्य संग्रह 'पहली किरण', 'मानस मंथन' तथा 'अनंत की ओर'. संप्रति : परिवार के साथ कनेक्टीकट में रह रही हैं. सम्पर्क : shashipadha@gmail.com

संस्मरण

हवा में तैरते सुर

शिवालिक की पर्वतमाला की छोटी-छोटी पहाड़ियों की तलहटी पर बसी है एक सैनिक छावनी - पठानकोट. पंजाब और जम्मू-काश्मीर की सीमा में सेतु के समान यह छोटा-सा शहर व्यापारिक गतिविधियों के लिए भी जाना जाता है. इस शहर के पूर्वोत्तर में चम्बा, धर्मशाला, डलहौजी जैसे पर्यटन स्थल हैं और पश्चिमी सीमा पर भारत-पाक सीमा रेखा. लीजिए मैं शहर का भौगोलिक वर्णन क्यों करने लगी. शायद आपको उस शहर से परिचित करवाना चाहती हूँ जहाँ सारिका और मैं रहते थे. वैसे उसका नाम क्या था मैं नहीं जानती. मेरा उससे परिचय भी अचानक हुआ था. इस सैनिक छावनी के बीचों-बीच हमारा सरकारी बँगला था 'आशियाना'. शायद किसी शायराना स्वभाव वाले ब्रिगेडियर साहब ने इसका नामकरण किया हो. अंग्रेजों के समय के बने हुए इस आलीशान घर में इतने कमरे थे कि गिने भी नहीं जाते थे. किन्तु जो बात इस घर की विशेष थी वो यह कि घर के आसपास इतनी खाली ज़मीन थी कि एक छोटा-मोटा गाँव बसाया जा सकता था. इस घर को बनाते समय इस बात का ध्यान रखा गया था कि किसी भी प्राचीन पेड़ को काटा नहीं गया था यानी बरगद, इमली, जामुन, आम, आदि के पुराने पेड़ सुरक्षित रखे गए थे. अतः इस प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर बंगले में प्रवेश करते ही मैं प्रकृति से आत्मसात हो गई.

> *उसके स्वर कुछ क्षीण से थे या अपनी मनःस्थिति के अनुसार हमें ऐसा आभास हुआ. गाड़ी में बैठते हुए हमने अपनी प्यारी सारिका के कूजन स्थल को नमस्कार किया और भारी मन से वो घर छोड़ दिया.*

वसंत ऋतु अपने पूर्ण यौवन पर थी और बंगले के चारों ओर की बगिया ने भी सतरंगी चुनरी ओढ़ ली थी. एक दिन प्रातःकाल की चाय की ट्रे आते ही हमने अपने शयनकक्ष की खिड़की के बाहर किसी पक्षी के अत्यंत मधुर सुरों में गाने के स्वर सुने. आसाम की चाय की मीठी चुस्की और पक्षी की मधुर कूज ने सुबह-सवेरे मन इतना प्रसन्न किया कि उस दिन सारी कलियाँ खिली-खिली लगीं, लान की घास में कोई सूखा तिनका नहीं दिखा और सारे पेड़ हवा में झूमते हुए दिखाई दिए. अगले दिन जैसे ही आँख खुली (चाय की ट्रे के साथ) उसी समय पंछी के मीठे मीठे सवर भी सुनाई दिए— कूऊऊ, कू ऊ ऊ ऊ, कू ऊउऊ. आदत के अनुसार मैंने घड़ी देखी, समय था ५.४५. यानी मेरे पति की व्यस्त दिनचर्या को ध्यान में रखते हुए इसी समय हमारी चाय की ट्रे बरामदे में तिपाई पर रखी जाती थी. शायद उस गायक पंछी के उठने का भी यही समय होता होगा. खैर, दो तीन दिन के बाद एक सुबह चाय के साथ उस पंछी के सुरीले गान ने ऐसा प्रभाव छोड़ा कि मैं भी उसके स्वर के साथ स्वर मिला कर गाने लगी- कूऊऊ, कूऊऊउउऊ, कूऊऊऊ. मेरी आवाज़ सुनते ही वातावरण में

गहरी चुप्पी छा गई. कहीं से कोई स्वर नहीं आये. जैसे मैंने उसकी स्वर साधना में विघ्न डाल दिया हो. कुछ क्षणों के बाद मैंने पुनः उसे पुकारते हुए कहा, कू, कूऊ, कूउउऊ. थोड़ी देर बाद उसने कू कू किया लेकिन उसके स्वर थोड़े सतर्क थे, हवा में तैर नहीं रहे थे. अब मैं भी अपनी दिनचर्या में लग गई.

इसके बाद तो प्रतिदिन ५.४५ पर भोर किरण के सुनहरे रंगों को निहारते हुए पंछी की कूजन और सुगन्धित आसामी चाय की चुस्की हमारा दैनिक नियम बन गया. कई बार मैं और मेरे पति देर तक उसके साथ स्वरालाप करते और वो भी पूरे उत्साह के साथ हमारे साथ खिलवाड़ करती. इस पूरे खेल में एक अद्‌भुत बात यह थी कि हमने आज तक उसे देखा नहीं था. फिर भी हमने उसको प्यारा-सा नाम दिया- सारिका. वो शयन कक्ष के पिछवाड़े किसी ऊँचे घने पेड़ की ऊँची घनी शाख पर बैठी कूजती थी, शायद सूर्य नमस्कार के मन्त्रों का उच्चारण करती थी या भोर की किरणों के साथ खेलते हुए कोई गीत गाती थी. मैं तो केवल इतना ही जानती थी कि अब हमारा उससे गूढ़ सम्बन्ध बन गया था.

एक दिन हम दोनों सुबह उसके आने के समय से पहले ५.३० मिनट पर ही दबे पाँव शयन कक्ष के पिछवाड़े जाकर खड़े हो गए. सोचा जैसे ही सारिका अपनी स्वर साधना शुरू करेगी हम उसे ढूँढ निकालेंगे. ५.४५ पर जैसे ही उस ऊँचे पेड़ की ऊँची टहनी से उस की कूजन सुनाई पड़ी हम भी कू-कूऊ-कूऊऊउउऊ करते हुए उस पेड़ के पास पहुँच गए. हमारी पदचाप ने उसे सतर्क किया और वो उस दिन कुछ नहीं बोली. अगले दिन बड़े संयम के साथ हम उस पेड़ के नीचे उसके आने की प्रतीक्षा करते रहे और वो आई. जैसे ही उसने कू कू करना शुरू किया, हमने उस ढूँढ निकाला. अब वह हमारी पदचाप से अभ्यस्त हो गयी थी अतः उस दिन वो उड़ी नहीं. एक पल के लिए तो हमारी दृष्टि उस पर टिक ही गई और पत्तों की जाली के बीच हम जो भी देख पाए उससे यही निर्णय लिया कि न तो वो कोयल जैसी काली थी और न गोरैया जैसी मटमैली. तीन रंगों से रंगे उसके पंख बहुत ही कोमल और सुन्दर थे और चोंच कुछ पीली सी थी. क्षण भंगुर सी उस भेंट में ही वो हमारी अपनी प्रिय सारिका हो गई. अब तो सारिका के साथ हमारी हर सुबह बहुत आनन्दमय हो उठती. उसे भी हमारी आदत सी पड़ गई थी. हम तीनों का स्वरालाप लगभग हर रोज ही चलता था. हम जब भी कुछ दिनों के लिए शहर से बाहर जाते तो हमारे सहायक हमसे कहते कि सारिका बहुत देर-देर तक हमें पुकारती थी, शायद हमें ढूँढती थी.

सब दिन एक समान नहीं होते, विशेषतयाः सैनिकों के जीवन में. उन्हें तो हर दो वर्ष के बाद अपना घर बाँधना पड़ता है. अतः हमारा भी स्थानान्तरण शिमला हो गया. आशियाना में हमने दो वर्ष बड़े सुख से बिताये थे और फिर हर शहर की अपनी एक खुशबू, एक खास रौनक होती है. हमें तो इस शहर में प्यारी सारिका मिली थी. हमें इस शहर को तथा अपने मित्रों को छोड़ने का दुःख तो था ही सब से बड़ा दुःख यह था कि हम अपनी प्यारी-प्यारी सारिका को यहाँ छोड़ के जा रहे हैं. अगर बस में होता तो उसे पिंजरे में डाल के अपने साथ ले जाते और वहाँ किसी पेड़ की डाल पर छोड़ देतें किन्तु सब कुछ तो मन के अनुसार हो नहीं सकता. मिलन और वियोग तो जीवन का नियम है और हम सब को यह निभाना भी पड़ता है.

विदा के दिन हम जल्दी ही सुबह उठ कर बड़ी उत्सुकता से उस पेड़ के नीचे जा कर खड़े हो गए. हमने कूऊ, कूऊउ के स्वर में उसे बुलाया, पर वो नहीं आई. शायद अभी ५.४५ का समय नहीं हुआ था. हम ने फिर से बड़े प्यार से कूउऊ करके उसे गाने का आग्रह किया. पेड़ पर एक हल्की सी सरसराहट हुई. हम दोनों सांस रोक कर खड़े रहे क्योंकि हम उसे अंतिम बार अवश्य देखना चाहते थे. वो आई, कूजी और हम तीनों कुछ पल के लिए उसके स्वरों में गाते रहे. हमने भरे कंठ से उससे विदा कहा. हमें लगा कि वो भी शायद जान गई थी हम सदा के लिए जा रहे हैं. क्योंकि उसके स्वर कुछ क्षीण से थे या अपनी मनःस्थिति के अनुसार हमें ऐसा आभास हुआ. गाड़ी में बैठते हुए हमने अपनी प्यारी सारिका के कूजन स्थल को नमस्कार किया और भारी मन से वो घर छोड़ दिया. शिमला में हमें उसकी बहुत याद आती रही किन्तु फिर वहाँ की सर्दी और भारी हिमपात ने हमें किसी और दुनिया में पहुंचा दिया.

अपने सैनिक जीवन में हमने कई शहर देखे, कई घर बदले किन्तु हम सारिका को भूल नहीं पाए.

अब कभी भी, किसी भी देश में, हम कभी किसी पंछी की प्यारी-सी कुहक सुनते हैं तो सारिका को याद करके मुस्कुरा उठते हैं.■

मधु अरोड़ा

४ जनवरी १९५८ को जन्म. शिक्षा : एम. ए., सामाजिक विषयों पर लेखन, कई लेखकों के साक्षात्कार प्रकाशित एवं आकाशवाणी से प्रसारित. रेडियो पर कई परिचर्चाओं में हिस्सेदारी, मंचन से भी जुड़ी हैं. सम्प्रति - एक सरकारी संस्थान में कार्यरत.

संपर्क : एच-१/१०१, रिद्धि गार्डन्स, फिल्म सिटी रोड, मालाड (पूर्व), मुंबई-४०००९७

ईमेल : shagunji435@gmail.com

बातचीत

प्रख्यात साहित्यकार सूरज प्रकाश से मधु अरोड़ा की बातचीत

मधु : आपके लिये सृजन क्या है ?

सूरज प्रकाश : दरअसल सवाल इस तरह से होना चाहिये कि सृजन मेरे लिए क्या-क्या नहीं है. सृजन सब कुछ है. बेहतर तरीके से, अर्थपूर्ण तरीके से जीवन जीने का सिलसिला, अपने आपको अभिव्यक्त करने का सबसे सशक्त माध्यम. अपनी बात कहने का, सामने रखने का और अपने आपको कह कर हलका करने का माध्यम. मैं पहले भी कह चुका हूं कि जब लिखना चाहता था और लिख नहीं पाता था तो मैं बयान नहीं कर सकता कि उस वक्त कितनी छटपटाहट होती थी. मैं कई बार सोचता हूं कि जिनके पास अपने आपको अभिव्यक्त करने का कोई माध्यम या मंच नहीं होता, वे कैसा महसूस करते होंगे.

हमारे जीवन की तीन स्टेज होती हैं - एक्जिस्टैंस यानी जीने के लिए जीना. इस स्टेज में सारी मारामारी रोजी-रोटी तक ही सीमित होती है. दूसरी स्टेज होती है एक्सप्रेशन यानी अपने आपको अभिव्यक्त कर पाने की छटपटाहट और इच्छा और तीसरी स्टेज इससे आगे की होती है. वह है रिक्गनीशन. यानी जो कुछ कर रहे हैं, उसे मान्यता भी मिले. यह संतोष परम संतोष होता है. कई बार समाज खुद देता है और कई बार लोग इसके लिए भी छटपटाते हैं. अपने हाथ जगन्नाथ वाला तरीका अपनाते हैं. यानी अपने किये गये काम की खुद मार्केटिंग. साहित्य में इसे पुरस्कार, सम्मान, मंच, अनुवाद, समीक्षा, चर्चा वगैरह-वगैरह की तरह देखा जाता है.

मुझे इस बात का संतोष है कि मैं एक्जिस्टैंस से आगे वाली स्टेज यानी एक्सप्रेशन की श्रेणी में आता हूं और इस बात का भी संतोष है कि मैं अपने किये धरे की बहुत ज्यादा मार्केटिंग करने के गुर नहीं जानता, कर ही नहीं पाता. बेशक इस वज़ह से नुक्सान भी होते रहे हों. परवाह नहीं. मेरे पास जेनुइन पाठक हैं, वही मेरे काम का सबसे बड़ा रिक्गनीशन है.

आप अपने शुरूआती लेखन के विषय में कुछ बताएं.

सातवीं-आठवीं में पहली बार तुकबंदी की होगी. कविता की कोई समझ तो थी नहीं. बेशक पढ़ने का शौक था और हम भाई लोग देहरादून की इकलौती लाइब्रेरी, खुशीराम पब्लिक लाइब्रेरी में पढ़ने के लिए जाते थे, लेकिन तब यह पढ़ना चंदामामा, राजाभैया या बाल भारती तक ही सीमित था. बहुत हुआ तो प्रेमचंद की बाल कथाओं की कोई किताब ले ली. तो इसी तरह तुकबंदी शुरू हुई जो बहुत दिनों तक चलती रही. देहरादून के अखबारों में छपती रहीं ये बचकानी कविताएं. हां, तब तक बीए तक आते आते देहरादून के कई साहित्यकारों से परिचय हो चुका था. मैं १९७८ में दिल्ली आया. दिल्ली आकर नई नौकरी करने के दौरान बेशक लेखकों के बीच उठना-बैठना होता रहा लेकिन कुछ भी लिखा नहीं जाता था. बहुत घुटन होती थी लेकिन शब्द नहीं सूझते थे. न लिख पाने के कारण हमेशा मन पर दबाव रहता. ज़िंदगी निरर्थक-सी लगने लगती. समझ में नहीं आता था कि क्या और कैसे किया जाये. ढेरों अनुभव थे लेकिन उन्हें सिलसिलेवार कह पाना या लिख पाना ही नहीं होता था.

इस बीच मुंबई से रिज़र्व बैंक से नौकरी का ऑफर आ चुका था. १९८१ में मुंबई की राह पकड़ी. बंबई के शुरू के दिन बेहद तकलीफ भरे गुजरे. मार्च १९८१ में यहां आया था और जून १९८३ के आसपास सिंगल रूम में शिफ्ट किया था. भयंकर अकेलापन, ऑफिस का दमघोंटू माहौल और रहने की दिक्कतें, सारी चीज़ें बुरी तरह से निराश करती थीं.

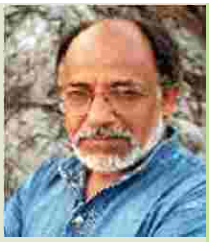

सूरज प्रकाश

जन्म : १४ मार्च, १९५२ देहरादून, शिक्षा : एम.ए., पत्रकारिता स्नातकोत्तर डिप्लोमा. लेखन : १९८७ से. प्रमुख कृतियाँ - कहानी संग्रह : अधूरी तस्वीर, छूटे हुए घर, साचा सरनामे (गुजराती में), व्यंग्य संग्रह : ज़रा सँभल के चलो, उपन्यास : हादसों के बीच, देस बिराना, अनुवाद : दिनकर जोशी कृत 'प्रकाशनों पडछायो' का 'उजाले की परछाई' नाम से (गुजराती से), विनोद भट्ट की तीन पुस्तकें- भूल चूक लेनी देनी, एंटन चेखव, गिजूभाई बधेका के उपन्यास दिवा स्वप्न तथा उनके पाँच कहानी संग्रहों का अंग्रेज़ी से : एनिमल फार्म (जॉर्ज आर्वेल), कॉनिकल ऑफ़ ए डैथ फोरटोल्ड (गैब्रियल गार्सिया माखंज), ऐन फ्रैंक की डायरी (ऐन फ्रैंक)। इनके अलावा कई कालजयी कहानियों के अनुवाद। संपादन : बंबई-१ (बंबई पर आधारित कहानियों का विशिष्ट संग्रह), कथा लंदन (इंगलैंड में लिखी जा रही हिंदी कहानियों का संग्रह)। पुरस्कार एवं सम्मान : गुजरात साहित्य अकादमी का पहला कथा सम्मान, महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी का प्रेमचंद कथा सम्मान.

संपर्क : kathakar@rediffmail.com

> जिस मोहल्ले में, शहर में और माहौल में आपने जीवन के बीस-बाइस बरस गुजारे हों, सारे अच्छे-बुरे संस्कार जिस शहर ने आपको दिये हों, वह चेतन अवचेतन में तो रहेगा ही और रचनाओं में आयेगा ही.

शायद रहने की इन तकलीफों के कारण ही आपकी कहानियों में घर बार-बार आता है.

हां, शायद ये बात सही है. अकेलेपन को भी मैंने बहुत भोगा है और घर, यानी रहने की जगह की तकलीफें भी मेरे हिस्से में ज्यादा आयी हैं. इसी वजह से घर को ले कर तरह-तरह के बिम्ब मेरी अलग-अलग कहानियों में आये हैं और अभी भी बहुत कुछ ऐसा है जो घर के जरिये मुझे कहना है. हालांकि मेरी पिछली कई रचनाओं और उपन्यास में भी घर बहुत शिद्दत से उभर कर आया है. कई कहानियों के नाम भी घर से जुड़े हुए हैं और थीम भी घर से मोह ही है. घर बेघर, छूटे हुए घर, खो जाते हैं घर, देस बिराना, मर्द नहीं रोते, सही पते पर, फैसले, छोटे नवाब बड़े नवाब तथा मेरी लम्बी कहानी देश, आजादी की पचासवीं वर्षगांठ तथा एक मामूली-सी प्रेम कहानी, इन सबमें घर ही है जो बार-बार हांट करता है और कुछ नये अर्थ दे जाता है.

हां, तो आप लिखना शुरू करने की बात कर रहे थे.

हां, मुंबई के शुरुआती दिनों में ऑफिस का माहौल बेहद तनाव भरा था और वहां गुटबाजी थी. नये आदमी को वैसे भी एडजस्ट करने में कुछ समय तो लगता ही है. कई बार सब कुछ छोड़-छाड़ कर वापिस भाग जाने का दिल करता. एकाध बार इस्तीफा भी लिख कर दिया. यह नया शहर जहां सिर्फ अकेलापन और अकेलापन था, मुझे रास नहीं आया था. आखिर आप कितने दिन और कब तक मैरीन ड्राइव की मुंडेर पर बैठ कर वक्त गुजार सकते हैं. वह भी अकेले. बाद में धीरे-धीरे शहर के कुछ लिखने-पढ़ने वालों से थोड़ा-बहुत परिचय हुआ, कुछ यार-दोस्त बने तो हम लोग खाली वक्त में मुंबई युनिवर्सिटी के लॉन में बैठने लगे. वहीं अनेकों से परिचय हुआ, आगे बढ़ा और इस जिंदगी के अकेलेपन का हमेशा के लिए खात्मा हुआ शादी के बाद भी लिखने की कई बार कोशिश की लेकिन बात नहीं बन पाती थी. लिखता और फाड़ देता. कोई गाइड करने वाला था नहीं. १९८७ तक आते-आते यानी ३५ साल की उम्र तक प्रकाशित रचनाओं के नाम पर मेरी कुल जमा पूंजी सारिका में दो-तीन लघुकथाएं और एकाध अनुवाद ही था. यहां तक आते-आते लिखने की चाह और न लिख पाने की तकलीफ बहुत सालने लगी थी. तय कर लिया कि अगर कोई नहीं बताता तो खुद सीखना है. कुछ न कुछ लिखता रहा. १९८६ में यानी ३६ बरस की उम्र में पहली कहानी नवभारत टाइम्स में छपी और दूसरी कहानी १९८७ में वरिष्ठ रचनाकार सोहन शर्मा ने अपने कथा संकलन में शामिल की. देर से ही सही, शुरूआत तो हुई. हिम्मत बढ़ी और अपने जीवन की महत्वपूर्ण कहानी अधूरी तस्वीर १९८८ में लिखी जो धर्मयुग में छपी. अब तक लिखने की मेज पर बैठने का संस्कार मिल रहा था और तनाव कम होने लगे थे. एक बार शुरू हो गया लिखना तो फिर पीछे मुड़ कर नहीं देखा.

आपकी कहानियों में आपका शहर देहरादून बार-बार आता है, स्वयं को दोहराता है, आखिर क्यों ?

हर बार तो नहीं, लेकिन दो एक कहानियों में, संस्मरण में और उपन्यास देस बिराना में देहरादून जरूर आया है. दरअसल जिस मोहल्ले में, शहर में और माहौल में आपने जीवन के बीस-बाइस बरस गुजारे हों, सारे अच्छे-बुरे संस्कार जिस शहर ने आपको दिये हों, वह चेतन अवचेतन में तो रहेगा ही और रचनाओं में आयेगा ही. अब ये तो हो नहीं सकता कि जिस शहर को बिल्कुल भी न जानता होऊं, उसे अपने कहानी किस्से के केन्द्र में रखूं. ये बेईमानी होगी. अब इसी बात को लें कि देस बिराना उपन्यास शुरू करने में मुझे बहुत देर लग रही थी क्योंकि कथानायक, जिस पर यह उपन्यास लिखा जाना था, पिथौरागढ़ का रहने वाला था और उसके बचपन के पचास-साठ पेज लिखने के लिए मुझे कोई शहर चाहिये था. पिथौरागढ़ कभी गया नहीं था सो उसे कथानायक का शहर कैसे चुनता. अब यही तरीका बचता था कि अपने देखे-भाले शहर देहरादून को ही कथानायक के बचपन का शहर बनाता. वही किया. इस तरह से मैं ज्यादा ईमानदारी से अपनी बात कह पाया. मेरे देखे दूसरे शहर हैदराबाद, दिल्ली, अहमदाबाद, पुणे भी मेरी रचनाओं में आये ही हैं. मुंबई तो खैर ज्यादातर रचनाओं में है.

बीस बरस से ज्यादा के लेखन में आपने उपन्यास, कहानी, व्यंग्य, अनुवाद, संस्मरण, संपादन सभी पर हाथ आजमाया है. अपने आपको किस विधा में ज्यादा सहज महसूस करते हैं.

महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति होती है. विधा नहीं. दरअसल रचना खुद ही तय करती है कि उसे किस विधा में लिखा जाना है. कई छोटे-छोटे बिम्ब होते हैं जिन्हें किसी बड़ी रचना में शामिल किये जाने तक का इंतज़ार नहीं किया जा सकता या कई अनुभव या बिम्ब अपने आप में मुक्कमल होते हैं और तुरंत अभिव्यक्ति चाहते हैं. इन्हें तब लघु कथाओं या दूसरे तरीकों से ही लिखा जाना होता है. बेशक मन तो उपन्यास

जैसी रचना में ही रमता है लेकिन उपन्यास एक के बाद एक नहीं लिखे जा सकते. कोई भी बड़ी रचना लेखक को पूरी तरह से खाली कर देती है. दूसरी बड़ी रचना के लिए खुद को तैयार करने में समय तो लगता ही है. तो ऐसे में अनुवाद करना या संस्मरण लिख लेना या कुछ और लिख लेना बहुत बड़ा सहारा होता है.

आपने आत्मकथाओं के अनुवाद ज्यादा किये हैं. कोई खास वजह?

आत्मकथाएं पढ़ना मुझे हमेशा अच्छा लगता रहा है. लेखकों, दार्शनिकों, राजनैतिक हस्तियों, अभिनेताओं और इतर विभूतियों की आत्मकथाएं पढ़ते हुए हमेशा मुझे एक दुर्लभ सुख मिलता रहा है. जब तक कोई आत्मकथा पूरी नहीं पढ़ ली जाती, हमेशा ऐसा लगता रहता है, मानो अपने जीवन की संघर्षपूर्ण गाथा लिखने वाले उस दार्शनिक, नेता, अभिनेता या महान आत्मा ने हमें अपने जीवन के ऐसे दुर्लभ पलों में झांकने की अनुमति दे दी हो, बीच-बीच हमें अपने साथ चाय पीने के लिए बुला लिया हो या शाम की सैर पर अपने साथ चहल-कदमी करने का न्यौता दे दिया हो. लेखक तब पूरी ईमानदारी से, आत्मीयता से और अपनी पूरी आस्था के साथ अपने जीवन के कुछ दुर्लभ, छुए, अनछुए किस्सों और घटनाओं की कहानी हमें खुद सुनाता लगता है. तब हम दोनों के बीच लेखक और पाठक का नाता नहीं रह जाता, बल्कि जैसे दो अंतरंग मित्र अरसे बाद मिल बैठे हों और भूली-बिसरी बातें कर रहे हों. लेखक हमारे साथ अपने अमूल्य जीवन के कई अनमोल पल बांटता चलता है और हमें जाने-अनजाने समृद्ध करता चलता है. हमें पता ही नहीं चलता कि आत्मकथा के जरिये हम लेखक के घर कई दिन गुज़ार आये हैं. एकाएक हम पहले की तुलना में कई गुना मैच्योर, अनुभवी और अमीर हो गये हैं. हम दूसरों से अलग हो गये हैं. मैं सचमुच अपने आपको खुशकिस्मत मानता हूं कि मैं इसी बहाने से विश्व की महान विभूतियों से मिल कर आया हूं और उनके संघर्षों का प्रत्यक्षदर्शी रहा हूं, उनके साथ मिल बैठने और बतियाने का असीम सुख पाता रहा हूं.

> *हमें पता ही नहीं चलता कि आत्मकथा के जरिये हम लेखक के घर कई दिन गुज़ार आये हैं. एकाएक हम पहले की तुलना में कई गुना मैच्योर, अनुभवी और अमीर हो गये हैं. हम दूसरों से अलग हो गये हैं.*

मुझे ये दुर्लभ सुख भी मिला है कि मैं कुछेक विश्व प्रसिद्ध मनीषियों की आत्मकथाओं को हिंदी के पाठकों तक ला पाया हूं. मैंने अंग्रेज़ी से हिंदी में मिलेना (जीवनीपरक गाथा), ऐन फ्रैंक की डायरी, चार्ली चैप्लिन की आत्मकथा और चार्ल्स डार्विन की आत्मकथा के अनुवाद किये हैं और ये हिंदी पाठक वर्ग द्वारा बहुत पसंद किये गये हैं. गांधी जी के बेटे हरिलाल के जीवन पर आधारित दिनकर जोशी के गुजराती उपन्यास प्रकाशनो पडछायो का हिंदी अनुवाद उजाले की परछाई के नाम से मैंने अरसा पहले किया था. पाठकों ने इसे भी बहुत पसंद किया था और कुछ अरसा पहले इस किताब पर गांधी माय फादर के नाम से एक फिल्म भी बनी थी.

अभी हाल ही में आपने गांधी जी की आत्मकथा का अनुवाद किया है?

जब राजकमल प्रकाशन के अरुण माहेश्वरी जी ने मेरे सामने गांधी जी की आत्मकथा के अनुवाद का प्रस्ताव रखा तो मैंने लपक लिया. मैं गांधी जी की आत्मकथा हिंदी, अंग्रेज़ी और गुजराती में पहले भी पढ़ चुका था और मुझे ये कहने में कोई संकोच नहीं है कि महादेव देसाई द्वारा किया गया इस आत्मकथा का अंग्रेज़ी अनुवाद श्रेष्ठतम अनुवाद है और पढ़ने में कई जगह तो गुजराती पाठ से भी अधिक आनंद देता है. एक बात और भी है कि चूंकि गांधी जी की आत्मकथा का अंग्रेज़ी अनुवाद मूल गुजराती में प्रकाशन के कई बरस बाद किया गया था, इसलिए महादेव देसाई ने गांधी जी से अपनी निकटता और अपनी आत्मीयता का लाभ उठाते हुए आत्मकथा के अंग्रेज़ी संस्करण में कुछेक संशोधन भी करवा लिये थे. इस कारण से 'माइ एक्सपेरिमेंटस विद ट्रुथ' मूल गुजराती 'सत्यनो प्रयोगो' की तुलना में बेहतर बन पड़ी है.

लेकिन मैं ये भी कहने की अनुमति चाहूंगा कि गांधी जी की आत्मकथा का हिंदी अनुवाद जो सन् १९५७ में श्री काशीनाथ त्रिवेदी ने किया था, हो सकता है, आज से लगभग ५० बरस पूर्व अपने प्रकाशन के समय अपने हिंदी पाठकों के साथ न्याय कर पाया हो, लेकिन तब से अब के बीच हिंदी भाषा ने स्वाभाविक रूप से इतने चोले बदले हैं कि यह अनुवाद आज के हिंदी पाठक को रचना का पूरा पठन सुख देने की स्थिति में नहीं रहा है. आप मानेंगे कि उस वक्त की हिंदी और आज की हिंदी में हर मायने में बहुत अंतर आये हैं. हर भाषा नित नये तेवर लेकर हमारे सामने आती है और मैं ये बात कहने की अनुमति चाहता हूं कि हर विश्व स्तरीय कृति का समय-समय पर नये सिरे से अनुवाद किया जाना चाहिये. यह वक्त की मांग होती है. हर काल का पाठक किसी भी कृति का अनुवाद अपने वक्त की भाषा में पढ़ना चाहता है.

> मुझे शास्त्रीय संगीत सुनना, घूमना और सच कहूं तो अकेलापन बहुत अच्छा लगता है. हैदराबाद, अहमदाबाद, दिल्ली और पुणे में मैंने अकेलेपन के लम्बे-लम्बे दौर गुज़ारे हैं. गिनूं तो अपनी उम्र के ५९ बरसों में से १५ बरस तो नितांत अकेलेपन के ही गुजरे होंगे.

आपने कहानियों का एक लंबा संसार देखा है, उनमें आये परिवर्तनों को देखा है, आप इस पर क्या कहना चाहेंगे ?

हमारे वक्त की कहानी यानी बीस बरस पहले की कहानी की जमीन दूसरी तरह की थी. ठीक उसी तरह जैसे हमसे पहले लिख रही पीढ़ी की कहानी की जमीन हमसे अलग थी. जीवन की आपाधापी, समस्याएं, तकलीफें, उन्हें झेलने और उनसे निपटने के हथियार दूसरे थे. हमारी पीढ़ी को भावुकता उपहार में मिली थी इसलिए कहानियों के ट्रीटमेंट में ये भावुकता कहीं न कहीं आ ही जाती थी. बेशक हमारी पीढ़ी पर ये आरोप पिछली पीढ़ी लगाती ही थी कि हम गंभीर नहीं हैं, पढ़ते-लिखते नहीं हैं और हड़बडी में हैं. मज़े की बात ये है कि हम भी आज की पीढ़ी पर ठीक यही आरोप लगा कर अपने कर्तव्य पूरे कर लेते हैं. आज की पीढ़ी बिल्कुल भी भावुक नहीं है. वह चीज़ों को ज्यादा विश्लेषणात्मक तरीके से देखती-परखती है और अपनी कहानियों का ट्रीटमेंट भी उसी हिसाब से करती है. बेशक नयी पीढ़ी पर यह सदाबहार आरोप तो लगाया ही जा सकता है कि वह नाम और नावां कमाने की हड़बड़ी में है.

मुंबई जैसे व्यस्त शहर में नौकरी और फिर लेखन, इनमें कैसे तालमेल बिठा पाते हैं ?

सीधी-सी बात है कि सबके दिन के २४ ही घंटे होते हैं. ये तो आप पर है कि आप इन २४ घंटों का कैसे और किन चीज़ों के लिए इस्तेमाल करते हैं. मैं ५९ बरस की उम्र में भी १५ घंटे रोज़ काम करने का माद्दा रखता हूं और कई बार खराब स्वास्थ्य के बावजूद इतने घंटे काम करता ही हूं. मेरी कुल जमा २७ या २८ किताबें हैं जिनमें ५०० पेज के अनुवाद वाली किताबें भी हैं. इनमें से ज्यादातर किताबें मुंबई के व्यस्त जीवन में से ही निकल कर आयी हैं. अभी कुछ दिन पहले मेरे एक ३० वर्षीय जूनियर अधिकारी ने यही सवाल पूछा था तो मैंने यही बताया था कि जिस आदमी के पास कोई काम नहीं होता वही सबसे ज्यादा व्यस्त होता है और जिसे कोई काम करना होता है वह कैसे भी करके वक्त चुरा ही लेता है. जब मैंने उससे पूछा कि तुम कितने घंटे काम करते हो या कर सकते हो तो उसका जवाब था कि आठ घंटे की नौकरी ही पूरी तरह निचोड़ लेती है. कुछ और करने के लिए ताकत बचती ही कहां है. बात ताकत की उतनी नहीं होती जितनी इच्छा शक्ति की होती है. शायद इसमें काम करने के मेरे तरीके ने भी मेरी मदद की हो. मैं हर काम, चाहे ऑफिस का हो, कहानी लिखना हो या अनुवाद करना, एक प्रोजेक्ट की तरह करता हूं और उसमें पूरी तरह डूब कर करता हूं. मैं मल्टी टास्किंग वाला आदमी हूं यानी एक ही समय में कई कामों को पूरी निष्ठा से पूरा कर सकता हूं और करता भी हूं.

गत छह वर्षों से आपकी कोई रचना पाठकों के सामने नहीं आई है इस साहित्यिक चुप्पी का कोई विशेष कारण ?

ये चुप्पी मेरी ओर से ओढ़ी हुई नहीं है. हर लेखक के जीवन में एक बार नहीं कई बार ऐसे पल आते हैं जब कुछ भी सार्थक लिखना नहीं हो पाता. बेशक मैंने सात बरस से एक भी कहानी न लिखी हो, इन बरसों में मैंने चार्ली चैप्लिन, चार्ल्स डार्विन और महात्मा गांधी की आत्मकथाओं के अनुवाद किये ही हैं. कुल अनूदित सामग्री ही तेरह चौदह सौ पेज की रही होगी. इसके अलावा ब्लॉग के बहाने शब्दों से जुड़े रहने की कोशिश करता रहा और संस्मरण और यात्रा वृतांत भी लिखे. इनकी किताब भी आयी.

जहां तक कहानी या उपन्यास लिखने की बात है, पहले से हल्का लिखना नहीं चाहता और पहले से अच्छा लिखा नहीं जा रहा तो यही किया जा सकता है कि सही वक्त का इंतज़ार करूं. कभी तो मेरे मन माफिक लहर आयेगी.

आपने अपने लिए जीवन के कुछ सिद्धांत तो बनाये होंगे. क्या हैं वे ?

'बी इन्नोवेटिव' यानी हर काम को नये नज़रिये से करें, 'बी क्रियेटिव' यानी हर काम को सृजनात्मक तरीके से करें, और 'बी डिफरेंट' यानी हर काम को दूसरों से अलग तरीके से करें. कोई वजह नहीं कि आपको अपनी छाप छोड़ने का मौका न मिले.

एपीजे अब्दुल कलाम साहब ने कहा है- 'सपने वो नहीं होते जो हम सोते हुए देखते हैं. सपने तो वे होते हैं जो हमें सोने नहीं देते'. ये मेरी प्रिय कोटेशन है. इसके अलावा मुझे शास्त्रीय संगीत सुनना, घूमना और सच कहूं तो अकेलापन बहुत अच्छा लगता है. हैदराबाद, अहमदाबाद, दिल्ली और पुणे में मैंने अकेलेपन के लम्बे-लम्बे दौर गुज़ारे हैं. गिनूं तो अपनी उम्र के ५९ बरसों में से १५ बरस तो नितांत अकेलेपन के ही गुजरे होंगे. अहमदाबाद में रहते हुए कितनी बार ये होता था कि शनिवार की दोपहर में घर आने के बाद अगला संवाद सोमवार सुबह ऑफिस जाकर ही बोलता था. लेकिन ये अकेलापन होता था, खालीपन नहीं. अकेलापन आपको भरता है जबकि खालीपन तोड़ता है. तो अभी भी जब भी मौका मिले, अकेलेपन में ही मस्त रहना अच्छा लगता है. बाकी बच्चों का साथ सुख देता है. अच्छी किताबें पढ़ना अच्छा लगता है.■

राजकिशोर

राजनीति में रुचि थी, लेकिन पत्रकारिता और साहित्य में आ गये. अब फिर राजनीति में लौटना चाहते हैं, लेकिन परंपरागत राजनीति में नहीं. सोचते हैं कि क्या मार्क्स की राजनीति गांधी की शैली में नहीं की जा सकती. एक व्यापक आंदोलन छेड़ने का पक्का इरादा रखते हैं. उसके लिए साथियों की तलाश है. आजकल इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नई दिल्ली में वरिष्ठ फ़ेलो हैं. साथ-साथ लेखन और पत्रकारिता भी जारी है. रविवार, परिवर्तन और नवभारत टाइम्स में वरिष्ठ सहायक सम्पादक के तौर पर काम किया. कई चर्चित पुस्तकों के लेखक. ताजा कृति : उपन्यास 'तुम्हारा सुख'.

सम्पर्क : ५३, एक्सप्रेस अपार्टमेंटस, मयूर कुंज, दिल्ली-११००९६ ईमेल : truthonly@gmail.com

नज़रिया

एक भूला हुआ शब्द

मैं उस पीढ़ी का हूँ जब प्रत्येक छात्र चरित्र प्रमाणपत्र बनवाने के लिए आतुर रहा करता था. मैंने भी अपना चरित्र प्रमाणपत्र बनवाया था अपने स्थानीय पार्षद से. उन्हें मेरे चरित्र के बारे में कुछ भी पता नहीं था. प्रमाणपत्र लेने का तरीका बहुत आसान था. अपना नाम, पिता का नाम और पता लिख कर उसके कार्यालय में छोड़ जाइए और अगले दिन अपना चरित्र प्रमाणपत्र ले आइए. विधायक और सांसद भी चरित्र प्रमाणपत्र जारी किया करते थे. उन्हीं दिनों मेरे मन में यह प्रश्न उठा था कि जिस व्यक्ति ने मेरे चरित्र के बारे में लिखा है, खुद उसका चरित्र प्रमाणपत्र कहाँ है? उन दिनों मुझे यह मालूम नहीं था कि अधिकारियों और निर्वाचित जन प्रतिनिधियों का चरित्र अच्छा है, यह मान कर चलने की प्रथा है.

कब चरित्र शब्द हमारे जीवन से गायब हुआ और उसकी जगह व्यक्तित्व शब्द आकर हमारे बीच बैठ गया, यह पता ही नहीं चला. अब लोग किसी के व्यक्तित्व के चरित्र की चर्चा करते हैं, जैसे इंदिरा गांधी का व्यक्तित्व, विश्वनाथ प्रताप सिंह का व्यक्तित्व, ज्योति बसु का व्यक्तित्व आदि. इन व्यक्तित्वों के चरित्र के बारे में कोई कुछ नहीं कहता. पत्र-पत्रिकाओं और आत्म-उन्नति की पुस्तकों में भी व्यक्तित्व निर्माण पर जोर दिया जाता है, चरित्र निर्माण पर नहीं. ऐसा लगता है कि किसी के चरित्र की छानबीन में किसी की दिलचस्पी नहीं रह गई है. चरित्र जैसा भी हो, व्यक्तित्व शानदार होना चाहिए.

लेकिन चरित्र अच्छा हुए बिना क्या व्यक्तित्व शानदार हो सकता है? मुझे संदेह है. जिसका चरित्र संदिग्ध है, उसके

> *ईमान आकाश से नहीं टपकता, न ही खेत में पैदा होता है. इसका संबंध चरित्र निर्माण से है, जिसकी शुरुआत बचपन और परिवार से ही हो जाती है.*

व्यक्तित्व में कुछ न कुछ विकृति आ ही जाती है. अफसोस की बात यह है कि चरित्र की अच्छाई या बुराई को अक्सर यौन नैतिकता से जोड़ कर देखा जाता है. जो लंगोट का पक्का है, वही चरित्रवान है - बाकी सब दुश्चरित्र हैं, यह मान्यता खतरनाक है. चरित्र का बुनियादी संबंध व्यक्ति की नैतिकता से है. नैतिक व्यक्ति को ही चरित्रवान मानना चाहिए. कई बार तो यह भी देखा गया है कि यौन नैतिकता के निर्वाह की दृष्टि से कोई व्यक्ति संदिग्ध है, पर बाकी सभी मामलों में वह चरित्रवान है. इसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है, जैसा कि लोहिया जी कहा करते थे, धोखा और बलात्कार को छोड़ कर प्रत्येक यौन संबंध नैतिक है. ऐसे मामलों में अनावश्यक रूप से शुद्धतावादी होने की जरूरत नहीं है. लेकिन इस तर्क से लंपटता को स्वीकार नहीं किया जा सकता. स्वतंत्रता और स्वच्छंदता एक ही चीज नहीं है.

चरित्र के परीक्षण का उचित तरीका यह है कि किसी व्यक्ति का संबंध दूसरे लोगों से कैसा है, वह अपने व्यवहार में नैतिकता और शिष्टाचार का पालन करता है या नहीं, अमानत में खयानत तो नहीं करता, किसी का शोषण या दमन तो नहीं करता, वह बेईमान है या ईमानदार, किसी को अपमानित तो नहीं करता आदि-आदि. इन सभी चीजों का संबंध व्यक्ति के नैतिक स्तर से है. यह कहना ठीक नहीं होगा

नज़रिया

कि वर्तमान समय में इन चीजों का कोई मूल्य नहीं रहा. हममें से प्रत्येक दूसरे के बारे में यह थाह लेता रहता है कि वह अच्छा है या बुरा. अच्छा या बुरा होने की परिभाषा बदल सकती है, पर अच्छे के प्रति पसंदगी और बुरे के प्रति नापसंदगी कभी खत्म नहीं हो सकती. क्या चरित्र की चर्चा इसलिए कम होती जा रही है कि अधिकांश लोगों का चरित्र एक जैसा होता जा रहा है? जब हम्माम में सभी नंगे हैं, तो कौन किसकी तरफ देखे?

खुशी की बात यह है कि भारतीय समाज में एक बार फिर चरित्र की महत्ता स्थापित हो रही है. मेरा संकेत अण्णा हजारे की लोकप्रियता की ओर है. आजादी के बाद किसी व्यक्ति ने देश भर के मानस को पहली बार इतनी गहराई से छुआ है. इसका रहस्य सिर्फ यह नहीं है कि भ्रष्टाचार की समस्या ने सारी सीमाएँ तोड़ दी हैं. यह तो है ही, लेकिन इतना ही बड़ा कारण यह है कि अण्णा हजारे चरित्रवान नजर आते हैं. उनका व्यक्तित्व शायद बहुत विराट नहीं है. वे पढ़े-लिखे भी ज्यादा नहीं हैं. अंग्रेजी न समझ सकते हैं, न बोल सकते हैं. फिर भी उनका कद दूसरों से बड़ा नजर आता है, तो इसीलिए कि उनका चरित्र दूसरों से निश्चित रूप से ऊँचा है.

आज के समय के बारे में अक्सर कहा जाता है कि यह समय आस्था के संकट का है. इस स्थापना से मैं सहमत नहीं हूँ. मुझे लगता है, समस्या चरित्र के संकट की है. चरित्रहीन लोगों की क्या तो आस्था और क्या तो अनास्था. क्षमा करें, मैं 'दुश्चरित्रता का समय' जुमले का इस्तेमाल करना नहीं चाहता. दुश्चरित्रता की जगह मैं चरित्रहीनता शब्द का प्रयोग करना चाहता हूँ. राजनीति, धर्म, व्यापार, डॉक्टरी, कानून, अध्यापन, साहित्य, पत्रकारिता - प्रायः सभी क्षेत्रों में काम करनेवालों में चरित्र का अभाव या उसकी कमी नजर आती है. इसीलिए ऐसा वातावरण बन गया है कि जिसे भी मौका मिलता है, वह बेईमानी करने से बाज नहीं आता. भ्रष्टाचार एक तकनीकी शब्द है. कौन-सा आचरण भ्रष्टाचार की श्रेणी में आता है और कौन-सा आचरण इस श्रेणी में नहीं आता, यह कानून की भाषा में लिख दिया गया है. बेईमानी का दायरा इससे काफी बड़ा है. भ्रष्टाचार बढ़ने का मुख्य कारण बेईमानी का बढ़ना है. दरअसल, बेईमानी से भ्रष्टाचार ही नहीं बढ़ता, और भी बहुत कुछ नष्ट होता है.

लेकिन ईमान आकाश से नहीं टपकता, न ही खेत में पैदा होता है. इसका संबंध चरित्र निर्माण से है, जिसकी शुरुआत बचपन और परिवार से ही हो जाती है. बेईमानी को फलने-फूलने का कितना मौका मिलेगा, यह सिर्फ संस्कार या स्वभाव पर निर्भर नहीं है. महत्वपूर्ण यह भी है कि समाज में बेईमान होने के कितने अवसर उपलब्ध हैं. और यह भी कि बेईमानी को दंडित करने की संस्थागत व्यवस्था कितनी सक्षम है.■

डॉ. सुरेश राय

जन्म महडौर, जिला गाजीपुर. शिक्षा - बनारस हिन्दू विवि, रूड़की विवि तथा कुरूक्षेत्र विवि से इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियरिंग में क्रमशः स्नातक, स्नातकोत्तर एवं आचार्य की उपाधि. अमेरिका में १९८६ से कार्यरत. कविता और कहानी लेखन में रुचि. प्रकाशित कविता संग्रह- 'अनुभूति के दो स्वर' में एक स्वर स्व. जयन्ती राय (पत्नी) तथा दूसरा स्वर सुरेश का. अमेरिका से प्रकाशित हिन्दी पत्रिका 'विश्व-विवेक' का कई वर्षों तक सह-सम्पादन भी किया.

सम्प्रति : लुजियाना स्टेट विवि., बैटनरूज के इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग विभाग में प्रोफेसर. ईमेल : suresh@ece.lsu.edu

लघुकथा

आग

उस रात छन्नू, लद्दी और मैं पिता के पास लेटे हुये कहानी सुन रहे थे. खाने के बाद हमारा यह रोज का कार्यक्रम था. छन्नू भैया मुझसे दो वर्ष बड़े थे और लद्दी तीन साल छोटी. तब मेरी उम्र सात वर्ष की थी. माँ को संगीत से बहुत लगाव था. वह बर्तनों को भी संगीत के सुरों में बाँधकर धोती थीं. अपना काम निपटा कर वह प्रायः हमारी मंडली में शामिल हो जाया करती थीं.

माँ आकर अभी-अभी बैठी थीं. बर्तनों का संगीत चुप था - पर न जाने क्यों उनका बड़बड़ाना जारी था. लगता था जैसे उन्होंने कोई भूत देखा हो. हमारे घर में खुद से बातें करने वाले के लिये यही कहा जाता था. पिता सुना रहे थे - एक राक्षस की कहानी. किसी देश में बहुत अशान्ति थी. वहाँ राक्षस ने राजकुमारी का अपहरण कर लिया था. राज-परिवार तथा प्रजा सभी दुःखी थे. परन्तु राक्षस के बल के सम्मुख वे लोग, लड़कर भी, असहाय थे. अपने गीत में पिता उनके दुःख की मार्मिक अभिव्यक्ति दे रहे थे. उनका गायन माँ जैसा सुरीला नहीं था, पर अपने दर्द से हमें बाँधें हुये था.

ठीक उसी समय दरवाजे को जोर जोर से पीटने की आवाज हुयी. छन्नू ने भागकर दरवाजा खोला. परन्तु खोलते ही एक धमाका हुआ. हमने देखा वह लहू-लुहान होकर जमीन पर गिर पड़ा है. जब तक बात कुछ समझ में आती, पाँच छः सैनिक गोलियाँ चलाते घर में घुसकर माँ तथा पिता को मार चुके थे. मुझे याद है लद्दी के रोने की और फिर किसी सैनिक की गोली खाकर सदा के लिये चुप होने की. मुझे ऊपर वाले ने बचाया. एक तो मरते-मरते पिता ने अपने खून से लथपथ सीने में मुझे छिपा लिया था, दूसरे लद्दी की दशा देखकर मुझे रोने की हिम्मत ही नहीं हुयी. मैं, पिता के लहू में सना, साँस रोककर चुपचाप निर्जीव पड़ा रहा. सैनिक भी मुझे मुर्दा समझ घर से बाहर निकल आगे बढ़ गये.

उक्त घटना को घटे आज पन्द्रह वर्ष बीत गये हैं. देश में अब शान्ति है. पर, मैं हर पल गर्म लहू को महसूस करते हुये बड़ा हुआ हूँ. राक्षस ने राजकुमारी का नहीं बल्कि मेरे सपनों का अपहरण किया था. समझ में नहीं आता ऐसी सभ्यता की परिणति क्या होगी जहाँ कोई न कोई राक्षस आम-जन का जबरन गला पकड़ उनके सीने में आग रख दे रहा है.

■

कौशलेन्द्र प्रपन्न

शिक्षा : एमए हिंदी और संस्कृत, हिंदी पत्रकारिता में दो वर्षीय पीजी डिप्लोमा, दिल्ली विश्वविद्यालय से बीएड, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार से एमएलआइएस और योग में एक वर्षीय डिप्लोमा. ऑल इंडिया रेडियो दिल्ली से विभिन्न लाइव एवं साक्षात्कार, परिचर्चा, बजट टॉक आदि प्रसारित. विभिन्न अखबारों में समीक्षाएं, शिक्षा एवं बजट पर विशेष आलेख प्रकाशित. स्कूलों में अध्यापन एवं इक्नामिक टाइम्स में बतौर कॉपी एडिटर कार्य किया. बाल कहानियां लिखने एवं बच्चों के बीच जाकर सुनाने में रुचि.

सम्पर्क : ६/५४, डबल स्टोरी विजय नगर, संत कृपाल आश्रम के पास, दिल्ली. ईमेल : k.prapanna@gmail.com

खोज-खबर

शिक्षा के लिए हाशिए पर खड़े बच्चे

विश्व के तकरीबन १५० देशों के नेताओं, नीति-नियंताओं, शिक्षाविदों ने दक्षिण अफ्रीका के डकार में एजूकेशन फॉर ऑल 'इएफए' नाम के एक प्रपत्र पर दस्तखत किये थे. उस प्रपत्र में स्पष्ट तौर पर छः लक्ष्य निर्धारित किए गए थे. जिसमें से पहला ही लक्ष्य था कि (२०१५ तक सभी ० से ६ आयुवर्ग के बच्चों को शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं देखभाल आदि) मिल जाएगी. छः लक्ष्यों में एक यह भी था कि बिना किसी भी प्रकार के लिंग भेद एवं बिना के किसी भी प्रकार के (लिंग, जाति, धर्म, संप्रदाय आदि के आधार पर) सभी बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त हो जाएगी. यानी उस प्रपत्र पर दस्तखत के अनुसार उन लोगों ने तय किया था कि पूर्वनिर्धारित समय सीमा २०१५ तक ० से ६ साल आयुवर्ग के विश्व के सभी बच्चों को बुनियादी शिक्षा प्राप्त हो जाएगी. ग्लोबल कंपेन फोर एजूकेशन 'एजूकेशन फॉर ऑल' पर सहमति जताने वाले अन्य सदस्य देशों ने भी माना था कि बच्चों के साथ किसी भी किस्म के भेदभाव के सभी बच्चों को कक्षा ८ तक की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा दी जाएगी. डकार के उस प्रपत्र की रोशनी में आज हमें शिक्षा का अधिकार कानून एवं उसके परिणामों को देखना चाहिए.

यूं तो शिक्षा का अधिकार कानून भारत में २००९ को लागू हुआ, लेकिन निजी स्कूलों को इसकी सिफारिशें पसंद नहीं आईं. उनका तर्क था कि हम २५ फीसदी बच्चों को मुफ्त शिक्षा नहीं दे सकते. इस पर सरकार ने उन्हें १२०० रुपए प्रति बच्चे देने की बात स्वीकारी थी. लेकिन इस पर भी निजी स्कूल मैनेजमेंट को आपत्ति थी. इस पूरे विमर्श में यदि कोई हाशिए पर सिमट रहे थे तो वह समाज के वो लोग थे जो अपने बच्चों को पढ़ाना तो चाहते थे लेकिन स्कूलों की फीस नहीं दे सकते थे. यह एक बड़ी चुनौती उन मां-बाप के सामने थी. अंततः उच्चतम न्यायालय ने हाल ही में इस पूरे प्रकरण पर संवैधानिक फैसला सुनाकर एक ऐतिहासिक कदम उठाया है. न्यायालय ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि सरकारी, गैर सरकारी, सरकारी अनुदान प्राप्त व गैर अनुदान प्राप्त सभी स्कूलों में प्राथमिक कक्षाओं में समाज के अत्यंत पिछड़े एवं आर्थिक-सामाजिक स्तर पर कमजोर बच्चों के लिए २५ फीसदी सीटें आरक्षित करनी होंगी.

गौरतलब है कि देश की शिक्षा खासकर प्राथमिक, उच्च प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा की स्थिति में सुधार लाने के उद्देश्य सरकारी स्तर पर कई प्रोग्राम चलाए जा रहे हैं. जिसमें सर्व शिक्षा अभियान विशेष उल्लेखनीय है. हर साल सर्वशिक्षा अभियान को ज्यादा से ज्यादा कारगर बनाने के लिए कुल बजट में पिछले सालों की तुलना में २०१२-१३ के बजट में सर्व शिक्षा अभियान को ३,१२४ करोड़ रुपए आवंटित किए गए हैं. जो पिछले साल की तुलना में २९ फीसदी अधिक है. गौरतलब है कि प्राथमिक स्कूलों में शिक्षा के स्तर को सुधारने के उद्देश्य से ही पूरे देश में ६००० मॉडल स्कूलों की स्थापना की जानी है. इसके लिए १०,८० करोड़ रुपए मिले हैं. ६००० स्कूलों में से २५०० स्कूलों का निर्माण सरकार खुद करेगी. लेकिन यहां यह विमर्श करने की आवश्यकता है कि फिर क्या वजह है कि अभी भी देश के ८० लाख से भी अधिक बच्चे स्कूल का मुंह नहीं देख पाए हैं. जबकि शिक्षा का

अधिकार कानून लागू हुए तकरीबन दो साल पूरे हो चुके हैं. समय-समय पर गैर सरकारी स्वयंसेवी संस्थाओं की ओर से सर्वे एवं अध्ययन रिपोर्ट बताते हैं कि देश में अभी भी कितने बच्चे हैं जिन्हें बुनियादी शिक्षा नहीं मिल पा रही है. प्रथम या इंफोसिस की ओर से किए गए अध्ययन की रिपोर्ट की मानें तो प्राथमिक स्कूलों में यूं तो बच्चों के नामांकन में आश्चर्यजनक बढ़ोत्तरी हुई है. वहीं एक अनुमान के अनुसार शिक्षा का अधिकार कानून को अमलीजामा पहनाने के लिए १२ लाख अध्यापकों की आवश्यकता पड़ेगी. साथ ही बच्चे स्कूल बीच में ही छोड़कर न चले जाएं इसके लिए हमें योजना बनानी पड़ेगी. क्योंकि आरटीई कानून के सामने दो सबसे बड़ी चुनौती यही है कि वर्तमान में दाखिला लेने वालों से छोड़ने वालों की तदाद ज्यादा है. दूसरी बड़ी चुनौती है प्राथमिक शिक्षा में लिंगानुपात. लड़कियों की संख्या अभी भी कई राज्यों में बेहद कम है. नेशनल कोईलिएशन फॉर एजूकेशन, दिल्ली के एक रिसर्च की मानें तो २०१०-११ में कक्षा १ से ५वीं तक में सबसे ज्यादा लड़कियों का नामांकन ५०.४१ फीसदी मेघालय में दर्ज किया गया. वहीं लड़कियों का सबसे कम दाखिला पंजाब में ४८.४१ फीसदी पाया गया. कुल राज्यों की बात करें तो महज ४८.४१ फीसदी लड़कियां प्राथमिक स्कूल में दाखिल हुईं. एक ओर आरटीई की मानें तो एक कक्षा में छात्र-अध्यापक का अनुपात ३०/१ का होना चाहिए. लेकिन यह अनुपात महज दस्तावेज में ही दिखने को मिल सकता है. हकीकत में २०१०-११ में कक्षा में छात्र-अध्यापक का अनुपात ६०/१ पाया गया. एक अध्यापक पर ६० बच्चों को पढ़ाने की संख्या सबसे ज्यादा बिहार में ७१.५८ फीसदी पाया गया. वहीं लक्ष्यद्वीप में यह अनुपात ० दर्ज किया गया. कुल राज्यों में २३.५९ फीसदी स्कूलों में ६०/१ का अनुपात पाया गया.

अफसोस की बात यह है कि उनमें से अधिकांश बच्चे बीच में ही अपनी पढ़ाई छोड़ देते हैं. कारणों की जद में जाएं तो मां-बाप की आर्थिक, वैचारिक, सामाजिक मजबूरियां ऐसी हैं कि बच्चे अपनी शिक्षा को बीच राह में ही छोड़कर घर की आर्थिक स्थिति सुधारने में काम में लग जाते हैं या लगा दिए जाते हैं. इस हकीकत को जबकि संविधान के बरक्स देखें तो साफतौर से संविधान के अनुच्छेद २९ ई में कहा गया कि बच्चों का किसी भी प्रकार से शोषण न हो और उन्हें किसी भी आर्थिक जरूरत पड़ने पर भी उनकी आयु एवं क्षमता के अनुसार काम पर न लगाया जाए. साथ ही अनुच्छेद २४ में भी प्रवाधान किया गया है कि १४ वर्ष से कम उम्र के किसी भी बच्चे को किसी भी खतरनाक काम में नहीं लगाया जा सकता. संविधान के प्रावधानों का समाज में किस तरह से माखौल उड़ाया जाता है यह भी किसी से छुपा नहीं है. दूसरे शब्दों में कहें तो महज स्कूलों में दाखिला भर करा देने से सभी बच्चों को शिक्षा मिल ही जाएगी तो हमें इस धारणा को बदलना होगा. जहां तक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की बात है तो यह दूसरे पायदान पर है. पहले तो बच्चों में स्कूल एवं शिक्षा के प्रति स्वाभाविक रुचि, ललक, चाह पैदा करने के लिए हमें स्कूल और शिक्षा को सुरुचिपूर्ण और मनमोहक बनाना पड़ेगा. ताकि बच्चे स्कूल से खुद को जोड़ पाएं. स्कूल उनके लिए हौआ या शिक्षा बोरियत, भय पैदा करने वाली नहीं होनी चाहिए.

> बच्चों में स्कूल एवं शिक्षा के प्रति स्वाभाविक रुचि, ललक, चाह पैदा करने के लिए हमें स्कूल और शिक्षा को सुरुचिपूर्ण और मनमोहक बनाना पड़ेगा. ताकि बच्चे स्कूल से खुद को जोड़ पाएं. स्कूल उनके लिए हौआ या शिक्षा बोरियत, भय पैदा करने वाली नहीं होनी चाहिए.

हालांकि अर्ली चाईल्डवुड केयर एडं एजूकेशन (ईसीसीई) ने संवैधानिक तौर पर हरेक बच्चे को उसकी उम्र छ साल पूरे होने तक शिक्षा प्राप्त करने का हक है. हरेक बच्चे को उसकी उम्र छ साल जब तक पूरी नहीं हो जाती शिक्षा मिले इसके लिए राज्य एवं केंद्र सरकार की होगी. दुनिया के तमाम नेताओं, शिक्षाविदों और विकास के योजनाकारों ने डकार फ्रेमवर्क फॉर एक्शन बनाया था. इसका लक्ष्य था कि २०१५ तक सभी बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध करा दी जाएगी. इसमें न केवल प्राथमिक शिक्षा बल्कि इसमें साक्षरता लक्ष्य, लैंगिक समानता और गुणवत्ता भी शामिल की गई थी. डकार फ्रेमवर्क ऑफ एक्शन खासतौर से इस पर केंद्रित था - 'समाज के अवसरविहीन और असुरक्षित ०-६ आयु वर्ग के बच्चों को मिलने वाली देखभाल और शिक्षा में न केवल बढ़ोत्तरी हो बल्कि उसमें सुधार भी हो.' गौरतलब है कि बच्चों के समुचित और सर्वांगीण विकास के लिए जन्म से छ साल इस लिहाज से अहम होते हैं, क्योंकि इसी समय एक स्वस्थ और उत्पादक युवा की नींव पड़ती है. जिन बुनियादी चीजों की नींव बच्चों में शुरू के छ सालों में पड़ती हैं वे हैं- संवेगात्मक, संवेदनशीलता, शारीरिक व आंगिक विकास, भाषा और संप्रेषण की क्षमता, सामाजिक मूल्यों और निजी आदतें आदि, जो बच्चों के साथ ताउम्र साथ रहती हैं.

भारत जैसे देश में ६ साल के अंदर के बच्चे पूरी आबादी में से सबसे ज्यादा खतरे के घेरे में होते हैं. छोटे बच्चे खासकर ६ साल से कम उम्र के बच्चों को तरह तरह के रोगाणु आदि

अपनी चपेट में ले लेते हैं. क्योंकि ०-६ आयुवर्ग के बच्चों का शरीर कमजोर एवं रोगों से लड़ने की खराब क्षमता की वजह से विभिन्न तरह के रोगादि को सह नहीं पाते. अत्यधिक बाल मृत्यु दर और कुपोषण एवं शिक्षा के अधिकार के घेरे में आने के बावजूद ऐसे बच्चे सामाजिक आंदोलनों का हिस्सा नहीं बन पाते हैं. इनकी स्थिति और दिशा-दशा को लेकर सामाजिक सरोकार न के बराबर हैं. ज्यादातर बच्चों की आवाज उभरकर नहीं आती. ऐसे मूक बच्चों की ओर ध्यान तब जाता है जब कोई इनकी आवाज बन कर सामने आता है.

गौरतलब है कि शिक्षा का अधिकार कानून और स्कूलों एवं समाज में बच्चों के साथ होने वाले बरताव को नजरअंदाज करके विमर्श नहीं किया जा सकता. हाल ही में नेशनल कमिशन फॉर प्रोटेक्शन ऑफ चाइल्ड राइट्स 'एनसीपीसीआर' ने देश के विभिन्न राज्यों के सरकारी और निजी स्कूलों में ६,६३२ बच्चों पर अध्ययन किया कि ऐसे कितने बच्चे हैं जिन्हें शारीरिक दंड़, भेदभावपूर्ण रवैए, यौन शोषण और ग़लत नजरों व व्यवहारों का सामना करना पड़ा. एनसीपीसीआर अपनी रिपोर्ट में बताती है कि ७५ फीसदी बच्चों को डंड़े या स्केल आदि के जरिए पीटा जाता है. वहीं रिपोर्ट में बताया गया कि ६९ फीसदी बच्चों को थप्पड़ मारे गए. इतना ही नहीं बल्कि ५७ दशमलव ५ फीसदी बच्चों के पीछे बूटाक पर मारा गया. वहीं ५७ दशमलव ४ फीसदी बच्चे ऐसे थे जिनके कान मरोड़े गए. गौरतलब है कि इस रिसर्च रिपोर्ट से पहले हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट कॉरपोरल पनिशमेंट पर कड़ा रुख अपनाते हुए स्कूलों में इस तरह के बरताव पर रोक संबंधी आदेश राज्य सरकारों को जारी की चुकी है. लेकिन कोर्ट के आदेशों की अनदेखी जारी है. इन आदेशों के बरक्स देश के कई राज्यों से बच्चों की पिटाई की खबरें आती रही हैं.

एनसीचीसीआर बच्चों के अधिकारों और सुरक्षा को लेकर सरकार की ओर से गठित समिति है जो देश के किसी भी कोने में बच्चों पर हो रहे अत्याचार, बाल मजदूरी, शोषण आदि मुद्दों कार्यवाई करती है.

केंद्र सरकार ने बच्चों को स्कूलों एवं समाज में ससम्मानपूर्वक बिना किसी डर, भेदभाव के जी सकें इस उद्देश्य से २००५ में एनसीपीसीआर को गठित किया. कहना न होगा कि बच्चों के साथ बड़ों के व्यवहार बड़े ही गैर जिम्मेदाराना होते हैं. क्योंकि बच्चे समाज के वैसे सदस्य के रूप में गिने जाते हैं जो बेजबान होते हैं. पुलिस स्टेशन में तमाम जुबिनाइल जस्टिस एक्ट २००७ को ताख पर रख कर कान उखाड़ दिए जाते हैं. पुलिस वाले जेजे एक्ट की परवाह किए बगैर डंडे बरसाते हैं.

एनसीचीसीआर बच्चों के अधिकारों और सुरक्षा को लेकर सरकार की ओर से गठित समिति है जो देश के किसी भी कोने में बच्चों पर हो रहे अत्याचार, बाल मजदूरी, शोषण आदि मुद्दों कार्यवाई करती है.

राज्यों में एससीपीसीआर अपने अधिकारों को मजबूती से इस्तेमाल तक नहीं कर पाती. इन बच्चों के जीने- मरने से सरकारें नहीं गिरतीं. तुरत-फरत में मामले को दबा दिया जाता है.

बच्चे हमारी चिंता के केंद्र में बहुत ही कम आते हैं. यदि बच्चों पर होने वाले उत्पीड़िनों पर नजर डालें तो एक बात साफ हो जाएगी कि न तो सरकार और न ही प्रशासन बच्चों की सुरक्षा, स्वास्थ्य और शिक्षा के प्रति गंभीर है. कहने को तो 'शिक्षा के अधिकार' कानून २००९ में लागू होने के बाद स्कूलों में बच्चों के दाखिले की संख्या में भारी उछाल दिखाए जा रहे हैं. लेकिन कई गैर सरकारी संगठनों की ओर से विभिन्न राज्यो में कराए गए अध्ययन के रिपोर्ट्स बताते हैं कि निश्चित ही स्कूल में रजिस्ट में दाखिले की संख्या बढ़ी है. लेकिन बच्चों के स्कूल में आने से ज्यादा स्कूल बीच में ही छोड़ने वाले बच्चों की संख्या भी कम नहीं है. स्कूल में बच्चों के आने से ज्यादा जरूरी बात है स्कूल में टिक कर अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी कर पाएं. जिसकी सिफारिश और निर्देश शिक्षा के अधिकार कानून देती है. दरअसल स्कूलों के वर्तमान माहौल बच्चों को अपनी ओर खींचने में असफल रहे हैं. यही वजह है कि बच्चे कभी पिटाई की वजह से तो कभी प्रशासनिक और अध्यापकों की गैर जिम्मेदाराना बरताव की वजह शिक्षा को बीच मझधार में छोड़ या तो घर बैठ जाते हैं या फिर पारिवारिक व्यावसाय में लग जाते हैं.

शिक्षा के अधिकार कानून में साफ निर्देश मिलता है कि हर राज्य एवं केंद्र सरकार की ओर से संचालित स्कूलों में स्कूल मैनेजमेंट कमेटी "एसएमसी" की स्थापना करना आवश्यक है. यह कमेटी स्कूल में होने वाली तमाम तरह की गतिविधियों, स्कूल के विकास कार्यों, शैक्षिक प्रक्रियाओं आदि में सक्रिय भूमिका निभाएगी. इस कमेटी में अभिभावक बतौर अध्यक्ष, उपाध्यक्ष होंगे. इस कमेटी में महिलाओं की संख्या ज्यादा होगी. स्कूल का प्रधानाध्यापक पदेन सचिव होगा.

गौरतलब है कि आरटीई को लागू हुए दो साल होने जा रहे हैं लेकिन अभी भी बहुत से राज्यों में एसएमसी की स्थापना नहीं हुई है. ऐसे चुस्त कदमों से आरटीई को अमल में लाया जा रहा है इसे देखते हुए एनसीपीसीआर की इन सिफारिशों के साथ कैसा बर्ताव होगा यह किसी से छुपा नहीं है.■

नीरजा द्विवेदी

५ मार्च, १९४६ को दातागंज, बदायूं में जन्म. शिक्षा - एम.ए. इतिहास. प्रकाशित पुस्तकें : ज़ादी माँ का चौरा, पटाक्षेप एवं मानस की धुँध (कहानी संग्रह), गाती जीवन वीणा एवं गुनगुना उठे अधर (कविता संग्रह), अशरीरी संसार, निष्ठा के शिखर बिंदु एवं स्मृति मंजूषा (संस्मरण) तथा कालचक्र से परे (उपन्यास). देश-विदेश में दो दर्जन से अधिक पुरस्कारों से सम्मानित.

सम्पर्क : १/१३७, विवेकखंड, गोमतीनगर, लखनऊ. ईमेलः neerjadewedy@yahoo.com

यात्रा-वृत्तांत

मानवता की भाषा, स्नेह की परिधि

दोनों हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर, अस्फुट स्वर में बोलते, श्वेत वस्त्रावृता, कोने में बैठी स्त्री को नमस्ते करते देखकर मैं चौंक पड़ी. शीघ्रता से मैं यह सोच उसके समीप पहुँची कि वह जमीन पर बैठी है, सम्भवतः वह बीमार है और उसे मेरी सहायता की आवश्यकता है.

'क्या आपकी तबियत खराब है?'

मैंने प्रश्न किया, पर उसके मुख की भाव भंगिमा से ऐसा प्रतीत हुआ कि वह मेरी भाषा नहीं समझती है. फिर 'मे आई हेल्प यू' कहकर मैंने उसे उठाने का प्रयास किया तो वह सिर हिलाकर कुछ बोलने लगी. अवाक् होकर मैंने उसकी ओर देखा, मैं उसकी भाषा समझने में अक्षम थी. अनजानी भाषा में बोलते हुए वह कुछ देर में यह समझकर कि मैं उसकी भाषा नहीं समझ पा रही हूँ, मौन हो गई, फिर कुछ क्षण रुक कर अटकते हुए सप्रयास बोली, 'प्रेयर'. 'ओह' कहकर मैं उठी और सामने लुफ्थांज़ा एयरलाइन्स के आफिस में प्रविष्ट होकर एक कुर्सी पर बैठ गई.

फ्रैंकफर्ट एयर पोर्ट पर जनवरी की रात्रि लाउन्ज में व्यतीत करने के उपरान्त अगली प्रातः ६:०० बजे मैं 'लुफ्थांज़ा एयरलाइन्स' के आफिस में आई थी. मेरी सीट १ बजे प्रातः दिल्ली से फ्रैंकफ़र्ट तक फ्लाइट नं० ७६१ से बुक थी और फ्रैंकफर्ट एयर पोर्ट पर तीन घन्टे रुककर ऐटलांटा के लिये फ्लाइट नं० ४४४ से बुक थी, जिससे मैं उसी दिन अटलान्टा पहुंचने वाली थी. दिल्ली में घने कोहरे और खराब मौसम ने सब उलट-पुलट कर दिया था. जो फ्लाइट एक बजे रात्रि दिल्ली से चलने वाली थी, परिवर्तित होकर उसका समय सवा बारह बजे दिन हो गया था. मेरे पति मेरे लिये बहुत चिन्तित थे क्योंकि वाइरल होने पर लिये गये एन्टीबाईटिक्स के रियेक्शन से मैं अत्यधिक कमजोर हो गयी थी और पैदल चलने की क्षमता तो मेरी वैसे ही कम है. मेरे लिये ह्वील चेयर की सहायता प्रदान करने हेतु मेरे पति ने लुफ्थांज़ा आफ़िस में लिखा दिया था, परंतु दिल्ली से प्रस्थान करने के पूर्व लुफ्थांज़ा के दिल्ली आफिस ने किसी प्रकार भी यह सूचना नहीं दी थी कि मेरी फ्लाइट लेट हो जाने की वजह से यदि कनेक्टिंग फ्लाइट जा चुकी होगी, तो फ्रैंकफ़र्ट एयरपोर्ट पर मेरे लिये वे क्या प्रबन्ध करेंगे? प्रस्थान की तिथि परिवर्तित कराने के विषय में प्रश्न करने पर उन्होंने बताया कि ऐसी स्थिति में काफी पैसा कटेगा. यह सुन करके मैंने अपने पति से कहा था, 'मैं इसी फ्लाइट से चली जाऊंगी, आप चिन्तित न हों.'

दिल्ली से चलते समय मन बहुत उदास था. पहली बार पति को छोड़कर मैं अकेली यात्रा कर रही थी. इसके अतिरिक्त 'बच्ची होते ही तुम जल्दी मेरे पास आ जाना' अश्रुभरे नेत्रों से मेरा हाथ पकड़कर छियासी वर्षीया मेरी सास द्वारा किया गया करुण अनुरोध भी मेरे पैर जकड़ रहा था. उधर दूसरी ओर अमेरिका में छोटे बेटे देवर्षि, बहू अनामिका एवं पौत्र देवांश के एक साथ फ्लू से बीमार हो जाने के कारण मातृत्व ज़ोर पकड़ रहा था. बहू का प्रसव काल समीप था और वह बहुत कमजोर हो गई थी. अतः उसकी सहायता हेतु मेरा जाना आवश्यक हो गया था. इसके अतिरिक्त पहली बार घर में कन्या आने वाली है, इस उल्लास में भी बेटा-बहू मेरी उपस्थिति चाहते थे.

यात्रा-वृत्तांत

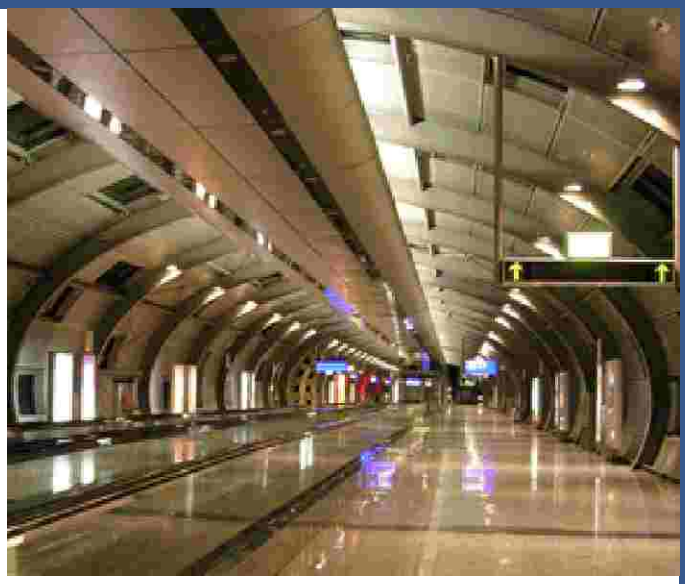

दिल्ली से दोपहर १२:१५ बजे फ्लाइट चली तो मैंने स्वयं को अन्तर्द्वन्द्वों से मुक्त करके, एकाकीपन को विस्मृत करने के लिये माँ वीणापाणि से सहयोग की आकांक्षा की. अचानक 'ई' मैगजीन की पहेली 'गुनगुनी धूप है' के लिये कल ही लिखी कविता की पंक्तियाँ याद आ गईं और मेरा मन काव्य तरंगिणी में प्रवाहित हो उठा. चलते समय पति द्वारा स्नेह से मेरे हाथ मे पकड़ाया छोटा पैड व पेन मेरा साथी बन गया. मन गुनगुनाने लगा तो पंक्तियाँ बनने, बिगड़ने लगीं और मनमांगी विन्डोसीट न मिल पाने और आकाश से धरती निहारने के आनंद से वंचित रह जाने का दुःख भी धूमिल हो गया.

शाम को साढ़े चार बजे फ्लाइट फ्रैंकफर्ट पहुँची. मेरे सहयात्री एक भारतीय ने मेरी सहायता करते हुए कहा 'आन्टी! यहाँ आप असिस्टेन्स जरूर माँग लीजियेगा.'

प्लेन से उतरकर मैंने वहाँ उपस्थित स्टॉफ से कहा, 'आई कैन नॉट वाक लांग, सो आई नीड असिस्टेन्स.' (मैं ज्यादा पैदल नहीं चल पाऊंगी, मुझे सहायता चाहिये). उसने कहा - 'यू फौलो दिस लाइन एण्ड इन फ्रन्ट ऑफ यू देयर आर कार्ट्स, यू वेट देयर.' (आप इस लाइन में चले जाइये और आपके सामने ही कार्ट मिलेगी, वहाँ प्रतीक्षा कीजिये). वहाँ से कुछ दूर पर ही बच्चों की कार जैसी एक कार्ट मिली जिसमें बीच की सीट पर दो सज्जन बैठे थे. पिछली सीट पर मैं भी बैठ गई. कुछ ही देर में आगे की सीट पर आकर एक लड़का बैठ गया और कार्ट चलाकर आफिस के पास ले आया. वहाँ से उसने एक लड़की को मार्ग दर्शन हेतु मेरे साथ भेज दिया. जैसी आशंका थी, आफिस पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि आज की फ्लाइट जा चुकी है. उपस्थित अधिकारी ने कहा, 'यू विल हैव टु स्पेन्ड द नाइट हियर, वी कान्ट डू एनीथिंग. यू विल गेट द फ्लाइट टुमारो'. (आप को रात्रि यहीं बितानी होगी, कल फ्लाइट मिलेगी. हम कुछ नहीं कर सकते हैं). उसने मुझसे प्रश्न किया, 'विच कन्ट्रीज पासपोर्ट डू यू हैव'. (आप के पास किस देश का पास पोर्ट है?) मैंने उत्तर दिया, 'इन्डियन पासपोर्ट'. इस पर उसने कहा, 'सॉरी आई कान्ट हेल्प यू. यू हैव टु स्पेन्ड द नाइट इन द लाउन्ज. आई विल गिव यू ब्लैंकेट, पिलो, वाटर एण्ड सम स्नैक्स'. (खेद है कि आपको रात्रि लाउंज में बितानी होगी. आपको कम्बल, तकिया, पानी एवं नाश्ते हेतु भोजन मिल जायेगा). इस पर मैंने कहा, मेरा बेटा मुझे लेने के लिए अटलान्टा एयर पोर्ट पर आकर प्रतीक्षा करेगा, उसे सूचना देनी है. इस पर एक लड़की मुझे लेकर दूसरे आफिस में गई. वहाँ से फोन करने की अनुमति नहीं मिली तब उसने मुझसे लेकर पाँच डालर की यूरो करेन्सी चेन्ज कराई और फोन मिलाकर देवर्षि से मेरी बात कराई. मैंने देवर्षि को बताया, 'कल इसी फ्लाइट से आऊँगी, पापा को भी बता देना.' वह लड़की बड़े प्यार से मुझे लाउन्ज में ले आई.

इतने विशाल जनहीन लाउन्ज में एक कोने की बेन्च पर मैंने अपना हैन्डबैग रख दिया. मेरे पास जर्मनी का वीसा नहीं था अतः मुझे इसी लाउन्ज में रुककर रात्रि व्यतीत करना आवश्यक था. उस लड़की ने लिफ्ट की ओर इंगित करते हुए बताया, 'प्रेस बटन थ्री, यू विल फाइन्ड रेस्ट्राँ देयर. यू कैन हैव समथिंग टु ईट'. (बटन तीन दबाने पर आप रेस्ट्रां में पहुंच जायेंगी, जहां आपको खाने को मिल जायेगा). बेन्च के बगल में स्टूल पर उसने एक बोतल पानी व कुछ बिस्कुट रख दिये. एक शाल जैसा पतला ब्लैंकेट और २ छोटे कुशन जैसे पिलो उसने बेंच पर रख दिये और मुझसे प्रातः ६ बजे लुफ्थान्ज़ा एयरलाइन्स के आफिस में, जो समीप ही था, आने को कहा. इतने बड़े लाउन्ज में मुझे लगभग अकेला छोड़ते हुए वह भी मेरे प्रति सम्वेदनशील हो उठी थी अतः उसने दूर एक कोने में बैठी एकमात्र महिला यात्री से मेरा परिचय कराना चाहा, परन्तु वह स्त्री वहीं पर पाषाणवत् बैठी रही. इस पर वह लड़की आकर मुझसे 'बाइ' कहकर चली गई. उसकी शिष्टता ने वहाँ रात्रि व्यतीत करने के मेरे आक्रोश को कुछ कम कर दिया. उस लाउन्ज में रात्रि व्यतीत करने वाली मेरे अतिरिक्त दूर बैठी केवल वही एक स्त्री थी. कुछ समय पश्चात् बीच की बेन्च पर एक श्वेत व्यक्ति आकर बैठ गया था जो न मालूम यात्री था या कि कर्मचारी.

शाम के छः बज चुके थे. मेरी बहिन सुषमा ने चलते समय पूड़ी, सब्जी, बनाकर साथ रख दी थीं. मैंने हैंड बैग से निकालकर प्रेम से भोजन किया, पानी पिया और जरूरी कागजात पाउच में रखकर, कमर में बाँधते हुए, बेन्च पर शाल ओढ़कर लेट गई. स्वेटर, कोट सब पहनकर लेट जाने से भयंकर सर्दी से बचाव हो गया.

फ्रैंकफर्ट एयरपोर्ट पर बिताई वह रात्रि मेरे जीवन की रोमांचकारी घटनाओं में एक है. नींद में खो जाने के पश्चात अचानक कुत्तों के भौंकने की आवाज से नींद खुली तो मैंने देखा कि दो भयंकर कुत्तों को लेकर काली वर्दी पहने सुरक्षाकर्मी यमदूत के समान लाउंज में चक्कर लगा रहे हैं.

एक सुरक्षाकर्मी बीच-बीच में अपने हाथ में पकड़े कुत्ते को एक लकड़ी जैसी कोई वस्तु चबाने के देता और फिर छीन लेता था. कुत्तों के शोर से वातावरण भयावह हो गया था. चारों ओर घुमाकर वे लोग कुत्तों को लेकर एक दरवाजे से बाहर निकल गये और फिर आधे घन्टे बाद ही उन्हें लेकर फिर वापस आ गये. मैं तो चुपचाप शाल ओढ़कर, अपनी आँखे बन्द करके लेटी रही. कुछ देर में एस्कलेटर से अनेकों यात्रियों का ऊपर जाने का शोर सुनाई दिया. सम्भवतः कोई फ्लाइट आई थी या जा रही थी.

कुत्तों को लेकर सुरक्षाकर्मियों का आना-जाना रात भर चलता रहा. कुछ घन्टों के पश्चात् चार कुत्तों को लेकर, कई काली वर्दीधारी सुरक्षाकर्मी लाउन्ज में घूमते नज़र आये. उनमें एक कुत्ते पर दृष्टि गई, तो वाकई मेरी रूह काँप गई. बड़े-बड़े बालों वाला, मोटा-ताजा, भयंकर जर्मन शेफर्ड कुत्ता था और बड़ी बुलन्द आवाज थी उसकी. मेरी स्मृति में कुछ समय पूर्व हिटलर पर देखी एक फिल्म झिलमिला उठी जिसमें एक यहूदी स्त्री के बच्चे पर गेस्टापो वाले कुत्ते छोड़ देते हैं, जो भंयकर शोर करते हुए बच्चे पर टूट पड़ते हैं. इतना कोहराम वहाँ मचा था कि एक क्षण को तो मैं विचलित हो उठी, पर तुरन्त ध्यान आया कि ये तो सुरक्षा कर्मियों के प्रशिक्षित कुत्ते हैं. मेरे पास भोजन के अतिरिक्त कपड़े ही हैं और कोई प्रतिबन्धित वस्तु तो है नहीं. भोजन भी सामने स्टूल पर ही रक्खा था. इसी समय मेरी दृष्टि सामने गई तो मैंने देखा कि लाउन्ज में तीन-चार और लोग भी शाल ओढ़कर सो रहे हैं. सम्भवतः मेरी तरह ही उनकी भी फ्लाइट छूट गई होगी. किसी प्रकार सोते-जागते रात्रि व्यतीत हुई. प्रातः चार बजे नींद खुल गई तो मैं नित्यकर्म से निवृत्त हो आई. पूजा का बक्सा मेरे साथ में था. कुछ देर ईश्वर का ध्यान किया. अब भूख लगने लगी थी. अतः मैंने चलते समय भैय्या-भाभी द्वारा दी हुई मिठाई निकालकर खा ली और बोतल का बचा पानी पी लिया. मैंने चाय की तीव्र इच्छा का शमन करना ही उचित समझा क्योंकि ऊपर रेस्ट्राँ में जाने और जर्मनों को इंग्लिश में अपनी बात समझाने की परेशानी मैं मोल लेना नही चाहती थी.

कुत्तों को लेकर सुरक्षाकर्मियों का आना-जाना रात भर चलता रहा. कुछ घन्टों के पश्चात् चार कुत्तों को लेकर, कई काली वर्दीधारी सुरक्षाकर्मी लाउन्ज में घूमते नज़र आये. उनमें एक कुत्ते पर दृष्टि गई, तो वाकई मेरी रूह काँप गई.

किसी तरह जब छः बज गये तो मैं आकर लुफ्थान्ज़ा एयरलाइन्स के दफ्तर में बैठ गई. आठ बजे आफ़िस के कमरे से बाहर टॉयलेट जाकर लौटते समय मेरी दृष्टि बरामदे के कोने में बैठी उस दुबली-पतली स्त्री पर पड़ी थी, जो मुझे हाथ जोड़कर 'नमस्ते' की मुद्रा में अभिवादन कर रही थी. सफेद कपड़े से कानों तक ढंका हुआ मुख, लम्बी सी पतली मुखाकृति, भारतीयों का सा रंग रूप और मेरी देवरानी रश्मि की माँ की सी शारिरिक अनुकृति ने मेरे मन में उसके प्रति सम्वेदना उत्पन्न कर दी थी. बारम्बार मैं सोच रही थी कि यह स्त्री कौन है? किस देश की है? क्या भाषा बोल रही है? कोने में जमीन पर बैठकर वह प्रेयर कर रही है, पर मुस्लिमों की तरह नमाज़ भी नहीं पढ़ रही है. जर्मन वह हो नहीं सकती क्योंकि श्वेतवर्णी नहीं है. एयर लाइन्स के आफिस में प्रवेश करते समय कर्मचारियों ने जब उससे कुछ प्रश्न किये थे तब वह कुछ बोली नहीं थी, उसने केवल अपने सब कागज़ सामने बढ़ा दिये थे. उन्होंने उसमें से अपने मतलब की सूचना एकत्रित करके, सभी कागज उसे वापस देते हुए कोने की खाली कुर्सी की ओर इशारा करके बैठने को कह दिया था. वह चुपचाप एक कुर्सी पर जाकर बैठ गई थी.

साढ़े आठ बजे एक लड़की आई और उसने मुझसे पाँच मिनट बाद फ्लाइट के लिये चलने को कहा. तत्पश्चात् उसने एक अजीब सा नाम लेकर पुकारा. उत्तर न मिलने पर उसने उस रिक्त कुर्सी की ओर इशारा करके प्रश्न किया, 'व्हेयर इज दैट लेडी, हू वाज सिटिंग देयर? शी हैज टु गो टु अटलान्टा.' (वह स्त्री कहां है जो उस रिक्त कुर्सी पर बैठी थी. उसे ऐटलांटा जाना है). अब मुझे ज्ञात हुआ कि वह स्त्री भी अटलान्टा जाने वाली है. मैंने उस लड़की को बताया, 'वन लेडी हैज़ गौन आउटसाइड फौर प्रेयर'. (एक स्त्री पूजा हेतु बाहर गई हुई है.) इस पर वह सिर हिलाकर चली गई. मैं चुपचाप प्रतीक्षा करने लगी. चाय की हुड़क उठ रही थी. इतने में एक प्यारी-सी लड़की वहाँ आकर बढ़िया-सी काफी दे गई तो मन तरोताजा हो गया. कहाँ तो मैं कई बार चाय लेने की शौकीन हूँ और कहाँ कल शाम से एक प्याला चाय भी नसीब नहीं हुई थी.

नौ बजे के पश्चात् एक लड़की वहाँ पर आई और मुझे एवं उस स्त्री को सुरक्षा जांच के स्थल पर ले आई. अन्दर एक कार्ट खड़ी थी. सुरक्षा जाँच के पश्चात् उस पर बैठने को कहा गया . चूँकि हम दोनों स्त्रियाँ साथ थे, वर्ण भी एक सा था तो सुरक्षा अधिकारी ने मेरी सहयात्री के कागज़ भी मेरे कागजों में रखकर मुझे दे दिये. मैं असमन्जस में थी कि तभी उक्त अधिकारी ने मुझसे प्रश्न किया, 'शी इज़ विद यू?' (क्या वह आप के साथ है?) मेरे मना करने पर उसने उस स्त्री के कागज मुझसे वापस लेकर उसके हाथ में थमा दिये. उस स्त्री को भी

उसी कार्ट में बैठने को कहा गया. एक कर्मचारी उस कार्ट को चलाकर हमें अन्दर के लाउन्ज में ले आया. वहाँ आकर उसने कहा- 'नाउ यू सिट डाउन एन्ड वेट हियर'. (अब आप यहां प्रतीक्षा कीजिये.) उसने दाहिनी ओर के गेट की ओर इशारा करके कहा, 'यू हैव टु गो बाइ दैट गेट'. (आप को उस गेट से जाना है.) हम दोनों एक बेन्च पर पास-पास बैठ गईं. आखिरकार उद्घोषणा हुई, 'पैसेन्जर्स ऑफ एल.एच. ४४४ शुड प्रोसीड टु द गेट'. (एल.एच. ४४४ के यात्री गेट पर पहुंचें.) इस गेट से बाहर निकल कर सामने छोटी सी एक सुरंग जैसी बनी थी, जिसमें प्रविष्ट होकर मैं सीधे प्लेन के दरवाजे पर पहुँच गयी. वह स्त्री मेरे आगे थी, मैं कुछ विलम्ब से पहुँची. मुझे देखकर वह अपना टिकिट मुझे दिखाकर इशारे से सीट के विषय में पूछने लगी. मैंने चश्मा नहीं लगाया था अतः ठीक से पढ़ नहीं पाई. पीछे भी यात्री आ रहे थे अतः मैंने रास्ता न रोककर अपने से पीछे वाले यात्री से उस स्त्री की सहायता करने को कह दिया. मेरा सीट नं. था ४० बी. मेरे सहयात्री ने मेरे द्वारा सहायता की याचना करने के पूर्व ही मेरा हैन्डबैग उठाकर ऊपर के शेल्फ में रख दिया. इस प्लेन की सीट आरामदेह नहीं थी- खासतौर से एक दिन की यात्रा और फिर बीस घन्टे पतली-सी बेंच पर व्यतीत करने के उपरान्त मेरे लिये. हालांकि प्लेन के बीच वाले भाग में मेरी पहली सीट थी, परन्तु सहयात्री सभी पुरुष थे, अतः मैं मन ही मन संकोच का अनुभव कर रही थी. मैंने बाई ओर देखा वही स्त्री ३९ सी पर बैठी थी. मेरे आगे की सीट पर जो सज्जन आकर अपने परिवार के साथ बैठे थे वह हमारे वर्ण के ही थे. उनकी पत्नी श्वेत थी, बच्चे मिले-जुले वर्ण के थे. मैंने अनुमान लगाया कि सम्भवतः वह पंजाबी हों. इसी बीच उक्त सज्जन ने इशारे से उस स्त्री से उसके बगल की रिक्त विन्डोसीट पर बैठने की इच्छा व्यक्त की. परंतु उस महिला ने मुझे इशारा करके कहा कि तुम मेरी बगल की सीट पर आ जाओ नहीं तो (उस पुरुष की ओर इंगित करते हुए) वह बगल की सीट पर आना चाहता है. अन्धे को क्या चाहिये? दो आँखें - मुझे तो प्रकृति से अत्यधिक प्रेम है और हवाई यात्रा के दौरान विन्डोसीट मिल जाना मैं सदैव सौभाग्य मानती रही हूं; मैं मन ही मन प्रसन्नता से उछल पड़ी कि ईश्वर की कृपा से विन्डोसीट का प्रबन्ध हो गया. मैंने प्लेन अटेन्डेन्ट से अनुमति माँगी- 'मे आई एक्सचेन्ज माई सीट विद दैट विन्डोसीट.' (क्या मैं अपनी सीट उस विंडो सीट से बदल सकती हूं?) 'आफ्टर प्लेन टेक्स ऑफ एन्ड सीट बेल्ट साइन राइट्स ऑफ, यू कैन चेन्ज योर सीट.' (प्लेन के उड़ान भरने के बाद जब सीट बेल्ट बांधे रहने का निर्देश स्क्रीन से हट जाये, तब आप सीट बदल सकती हैं.) उसने अनुमति दे दी.

प्लेन की विन्डोसीट से नीचे देखने का आनन्द ही कुछ और है. लेगो गेम में बच्चों द्वारा बनाये गये छोटे-छोटे भवनों के शहर, रंग-बिरंगी अल्पना जैसे कलाकृतियाँ, बादलों का क्षण-क्षण छटा परिवर्तन करता रूप - कभी ऐसा प्रतीत होता जैसे रजाई की पुरानी रुई तोड़कर घुनने के लिये फैला दी गई है तो कभी नई धुनी हुई रुई जैसे बादल नभ में छा जाते. कभी टुकड़े-टुकड़े बादल भेड़ों के झुन्डों के रूप में परिवर्तित हो जाते. बादल हट जाते तो नीचे समुद्र तल और बीच-बीच में बादल के श्वेत टुकड़े दिखाई देते. ऐसा आभास होता जैसे श्यामल-तना, जीर्ण-शीर्ण वस्त्रावृत्ता प्रकृति का अनावृत्त सौन्दर्य निखर उठा है. कभी समस्त आकाश घने बादलों से ढँक जाता तो मन मचल उठता कि खिड़की से बाहर निकलकर नंगे पैरों उन पर दौड़ने लगूँ. ३५ हजार फीट की ऊँचाई से जब देर तक नीचे कुछ भी दृष्टिगोचर न होता तो ऐसे में मैं पैड और कलम निकाल लेती और कुछ पंक्तियाँ गुनगुनाते हुए नई कविता की सृष्टि में लग जाती. मेरी सहयात्रिणी चूँकि सहभाषिणी नहीं थी अतः हम दोनों ही मौन थे. कभी-कभी मेरी तन्द्रा उसके छींकने या खाँसने पर भंग होती. मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह बीमार है. अचानक वह कंधे उचकाकर, सिर आगे की सीट के पिछले हिस्से पर टिकाकर बैठ गई तो मैंने सोचा कि उसके कन्धों में दर्द है. मेरा शरीर स्वयं भी बुरी तरह अकड़ रह था. मैंने धीरे से अपने दोनों हाथों से उसके कन्धों की मालिश करते हुए, उसे इशारा करके अपनी गर्दन चारों ओर व ऊपर-नीचे घुमाने को कहा. मुझे लगा उसे कुछ आराम मिला और उसने अपनी भाषा में मुझसे कुछ कहा. मैं मूढ़ सी उसकी ओर देखने लगी. उसकी बात न समझ पाने पर उसने मेरा हाथ पकड़कर चूम लिया और अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की. बीच-बीच में उसे किसी वस्तु की आवश्यकता होती और वह एयरहोस्टेस को इशारे से बताने का असफल प्रयास करती तो मैं उसकी बात कुछ-कुछ समझकर अंग्रेजी में कहकर उसकी सहायता कर देती. एक-दूसरे की भाषा न समझते हुए भी हम दोनों के परस्पर काम चलाऊ वैचारिक आदान-प्रदान कर लेने पर मेरी स्मृति में सन् १९७६ की एक घटना कौंध गई. तब मेरे पति फैजाबाद में वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक थे. मेरे देवर रमेश, देवरानी रश्मि व उनकी बेटी सीमा अमेरिका से हमारे पास आये थे. मेरा बेटा

ऐसा आभास होता जैसे श्यामल-तना, जीर्ण-शीर्ण वस्त्रावृत्ता प्रकृति का अनावृत्त सौन्दर्य निखर उठा है. कभी समस्त आकाश घने बादलों से ढँक जाता तो मन मचल उठता कि खिड़की से बाहर निकलकर नंगे पैरों उन पर दौड़ने लगूँ.

देवर्षि चार वर्ष का था और सीमा पाँच वर्ष की. सीमा उस समय केवल अंग्रेजी बोलती थी, हिन्दी नाममात्र समझ लेती थी. देवर्षि हिन्दी बोलता था और कुछ-कुछ अंग्रेजी समझ पाता था. कुछ देर तक दोनों एक-दूसरे को देखकर शरमाते रहे, फिर बड़ों के आपसी वार्तालाप में व्यस्त हो जाने पर उन्होंने एक-दूसरे से आंखें मिलाईं और बोलना प्रारम्भ कर दिया. कुछ देर तक दोनों एक-दूसरे को बिल्कुल नहीं समझे, परंतु कुछ घन्टों के उपरान्त हमने देखा कि दोनों बाहर लान में खेल रहे थे और संकेतों एवं टूटी-फूटी भाषा के माध्यम से एक-दूसरे को अपनी बात समझा रहे थे. हम दोनों का भाषाई आदान-प्रदान भी उसी भांति चल रहा था.

मैं विन्डोसीट से नीचे देखती और जब नीचे दिखाई देना बन्द हो जाता तो कुछ लिखने में निमग्न हो जाती. इसी बीच मेरा ध्यान गया कि मेरी सहयात्रिणी बीच-बीच में कुछ अस्फुट बुदबुदाते हुए अपनी उंगलियों पर मन्त्रों का जाप जैसा कर रही थी. ऐसे में मेरे मन में पुनः यह जिज्ञासा कुलबुलाने लगती कि - मेरी सहयात्रिणी कौन भाषा-भाषी, किस देश की निवासिनी है? मैं कुछ भी अनुमान नहीं लगा पा रही थी. अचानक एयरहोस्टेस के हाथ से प्लेट गिर जाने से कुछ छींटे उसके कपड़ों पर गिर गये. नैपकिन से उसने कपड़े पोंछे तो मेरी दृष्टि उसके वस्त्रों पर गई. वह मैरून रंग का कुर्ता और सम्भवतः मैरून रंग की ही सलवार जैसा कुछ पहने थी. ऊपर से सफेद कपड़ा ढंका हुआ था जो बुर्का जैसा नहीं था. फिर भी मन में विचार आया कि क्या वह मुस्लिम है? पर तुरन्त ही ध्यान आया कि वह एयरपोर्ट पर मुस्लिमों की तरह नमाज़ नहीं पढ़ रही थी.

इसी समय कस्टम व इमिग्रेशन फार्म भरने को दिये गये. मैंने अपने फार्म भरकर पासपोर्ट में लगाकर ठीक से रख लिये. तब मेरा ध्यान गया कि वह अंग्रेजी नहीं जानती थी. अतः मैंने उसके फार्म मांगकर भरने का प्रयत्न किया, परंतु उसकी बात समझ न पाने के कारण असफल रही. तब उसने अपने फार्म व पासपोर्ट एयर होस्टेस को पकड़ा दिये, जिसने कुछ देर बाद लाकर उसे वापस कर दिया.

सामने स्क्रीन पर दिखाई दिया कि प्लेन अब न्यूयार्क के ऊपर उड़ रहा था. मैं उत्सुकता से नीचे देख रही थी. मुझे नीचे चाँदी के समान चमकती एक रजतनगरी दिखाई दी. घरों, सड़कों, पेड़ों, सभी स्थानों पर बर्फ जमी हुई थी. ऐसा लग रहा था जैसे चाँदी पिघलाकर बहा दी गई है. बाई ओर से सूर्य की तेज किरणें आँखों को चुभ रही थी अतः मैंने आधी ब्लाइन्ड बन्द कर दी और नीचे झांकने लगी. सूर्य के प्रचण्ड ताप से पिघलकर यहां वहां वह चांदी नीचे नदी के रूप में प्रवाहित हो रही थी. अत्यन्त सुन्दर एवं रोमान्चकारी दृश्य था. अचानक पुनः बादलों ने सम्पूर्ण आकाश को आवृत कर लिया. टर्बुलेन्स होने से हवाई जहाज जोर-जोर से थरथराने लगा. भयभीत हो मैंने टी.वी. पर चलती फिल्म पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास किया. इसी बीच मेरी सहयात्रिणी ने अपनी पोटली खोलकर कुछ खाने का व्यंजन निकाला और स्नेह से संकेतों द्वारा मुझसे भी लेने का आग्रह किया. मैंने सिर हिला कर मना किया. उसने पुनः सिर हिलाकर इशारे से सम्भवतः यह बताने की कोशिश की कि 'अच्छा है'. कुछ कहने का भी प्रयत्न किया जो मुझे पोर्क जैसा समझ में आया. मैंने फिर से मना कर दिया, पर मेरे मन में विचार आया कि यदि उसने पोर्क ही कहा है तो वह स्त्री मुस्लिम नहीं हो सकती, क्योंकि मुसलमान पोर्क नहीं खाते हैं. अनायास फिर उसकी पहिचान का प्रश्न मेरे सामने उभर आया, जिसका समाधान नहीं हो पा रहा था.

प्लेन अब न्यूयार्क के ऊपर उड़ रहा था. मैं उत्सुकता से नीचे देख रही थी. मुझे नीचे चाँदी के समान चमकती एक रजतनगरी दिखाई दी. घरों, सड़कों, पेड़ों, सभी स्थानों पर बर्फ जमी हुई थी. ऐसा लग रहा था जैसे चाँदी पिघलाकर बहा दी गई है.

न्यूयार्क निकल जाने के लगभग डेढ़ घन्टे के पश्चात हम अटलान्टा एअरपोर्ट पर उतरने वाले थे. सारा बदन अकड़ रहा था और थककर चूर हो रहा था. 'हे भगवान अटलान्टा के इतने बड़े एअरपोर्ट पर पैदल कैसे चल पाऊँगी, ऐसे ही इतना थक चुकी हूँ', यह सोच कर मुझे पसीना आ रहा था. आखिरकार यात्रा की घड़ियाँ समाप्त हुई. प्लेन रुकने पर मैं अपनी सहयात्रिणी की ओर देखकर विदा लेने के भाव से मुस्करा दी, जिसका उसने स्नेहिल प्रतिदान दिया. मैं प्रतीक्षा कर रही थी कि कोई अटेन्डेन्ट दिखे तो अपना हैन्डबैग ऊपर से नीचे उतारने में सहायता लूँ. इसी समय एक भारतीय युवक ने जो मेरे पीछे आ रहा था, आगे आकर मेरा हैन्ड बैग नीचे उतारकर मेरी समस्या का समाधान कर दिया. जब मैं किसी तरह अपना हैन्डबैग घसीटते हुए अपना पर्स, कोट हाथ में लटकायें हाँफती हुई नीचे उतरी तो पैदल चलने की हिम्मत नहीं थी. बाहर उतरकर मैंने एक कर्मचारी से सहायता के लिये पूछा तो उसने मेरा नाम पूछा. नाम बताने पर एक अफ्रीकन लड़का व्हील चेयर लेकर सामने आया और मुझसे बैठने को कहा. मुझे बिठाकर जब वह आगे लाया तो यह देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि दूसरी व्हील चेयर पर मेरी सहयात्रिणी बैठी है. वह युवक दोनों हाथों से एक-एक व्हील चेयर को धक्का देते हुए हमें इमीग्रेशन डेस्क तक ले

आया. पहले मेरी सहयात्रिणी के पेपर्स देखे गये. वहाँ उपस्थित अधिकारी ने उस अफ़ीकन पोर्टर से कहा- 'आई विल नौट साइन फौर हर. यू टेक हर टु एनदर आफिस.' (इनके कागज़ात पर मैं हस्ताक्षर नहीं करूंगा. इन्हें दूसरे कार्यालय ले जाओ). अब मेरा नम्बर आया. व्हील चेयर पर बैठे-बैठे हमारे दोनों हाथों की तर्जनी का निशान काग़ज़ पर लिया गया. कैमरे में फोटो खीची गई और प्रश्न किया गया, 'व्हाई हैव यू कम हियर?' (आप यहां क्यों आईं हैं?) मैंने बताया 'आई हैव फोर मन्थ्स रिर्टन टिकट. आई विल गो आफ्टर माई डाटर इन लाज डिलीबरी'. (मेरे पास रिटर्न टिकट है. मैं अपनी बहू की डिलीवरी के उपरांत वापस चली जाऊँगी.) उक्त अधिकारी ने मेरे पासपोर्ट पर ६ माह का वीसा देने की मुहर लगा दी और मुझे जाने की अनुमति दे दी.

अब आगे सुरक्षा जाँच का स्थान आया. पिछली बार जब मैं अपने पति के साथ आई थी तो एक घटना घटी थी. उस समय मैं सलवार कुर्ता पहने थी. मेरी पोशाक तथा नई जगहों को ध्यान से देखने के शौक ने मुझे सुरक्षा अधिकारियों की नज़र में आतंकवादियों की श्रेणी में पहुँचा दिया था. जगह-जगह पर मेरी कई बार चेकिंग हुई थी. शर्म भी आती थी, बुरा भी लगता था पर पिता व पति के पुलिस में रहने के कारण, पुलिस की मजबूरियों से भी परिचित थी, अतः मन मसोसकर रह जाती थी. इस बार मैं अकेले आ रही थी. अतः मैं सिल्क की पटोला की साड़ी पहनकर, बिन्दी लगाकर आई थी और चाहते हुये भी इधर-उधर किसी वस्तु की तरफ भी ध्यान से नहीं देखती थी. अतः मेरी सुरक्षा जांच साधारण ही रही.

यहाँ से आगे चलकर कस्टम चेक से पहले कन्वेयर बेल्ट से अपनी अटैचियाँ निकालनी थीं. यहाँ भी व्हील चेयर वरदान सिद्ध हुई. अटेन्डेन्ट ने मेरे द्वारा अटैची पहचान लेने पर, दोनों अटैची कन्वेयर बेल्ट से नीचे उतार ली. इसके बाद मेरी सहयात्रिणी का भी सामान पहचानकर उतारा. अब एक चेयर पर मैं बैठी थी, एक पर सहयात्रिणी एवं एक ट्राली पर हम दोनों का सामान था. अब एक हास्यापद दृश्य उत्पन्न हो गया. वह अटेंडेंट बारी-बारी से कभी मेरी चेयर को धक्का देता तो कभी दूसरी चेयर को और बीच में आगे बढकर ट्राली को धक्का देने लगता. ऐसे में मेरी नजरें शर्म से ऊपर नहीं उठ रही थी. रही-सही कसर एक भारतीय महिला यात्री की कटाक्षपूर्ण मुस्कराहट ने पूरी कर दी. पर मैं करती भी क्या, कमज़ोरी के कारण मजबूर थी. कस्टम पर मेरा सामान एक्सरे मशीन से निकालकर मुझे जाने की अनुमति मिल गई, परन्तु अभी मेरी सहयात्रिणी की जाँच होना बाकी थी. उस युवक ने एक ट्राली पर सारा सामान रखकर एक कोने में मेरी व्हील चेयर के साथ खड़ा कर दिया. इसके पश्चात मुझे प्रतीक्षा करने को कहकर वह उस महिला को लेकर दूसरे आफिस में चला गया. जाँच कराके लौटने में उसे आधा घन्टा लग गया. अब पुनः वही अनोखा दृश्य था - वह युवक क्रम से कभी एक व्हील चेयर को धक्का देकर आगे बढ़ाता, कभी दूसरी को और बीच में आगे बढ़कर सामान की ट्राली को धक्का देकर आगे बढ़ा देता. भगवान की कृपा से एक महिला कर्मचारी को उस युवक के ऊपर तरस आ गया और उसने आगे बढ़कर सामान की ट्राली थाम ली. सामान की एक बार और जाँच करके कनवेयर बेल्ट पर रख दिया गया. अब वह युवक हम दोनों की व्हील चेयर लेकर प्लेटफार्म पर आया. जहाँ से अन्डरग्राउन्ड ट्रेनें जाती थीं. इलेक्ट्रिक से चलने वाली इन ट्रेनों में खड़े रहने का स्थान होता है, बैठने का नहीं. स्टार्ट होते ही उनकी गति इतनी तीव्र हो जाती है कि अपने को सम्हालकर खड़े रखना आसान नहीं होता है. यदि व्हील चेयर न होती तो मेरे थके शरीर को ट्रेन की गति के अनुसार साधना मेरे वश में नहीं था, मैं निश्चित ही गिर गई होती. पहले प्लेटफार्म ई आया, फिर डी, फिर सी, फिर बी, फिर ए, इसके बाद बैगेज क्लेम का प्लेटफार्म आया. हर प्लेटफार्म पर उद्घोषणा होती थी, एक मिनट के लिये इलेक्ट्रिक ट्रेन का दरवाजा खुलता था और फिर बन्द हो जाता है और ट्रेन तीव्र गति से चल देती थी. बैगेज क्लेम के प्लेटफार्म पर उस युवक ने बारी-बारी से दोनों व्हील चेयर को बाहर निकाला. इसके पश्चात वह हमें कन्वेयर बेल्ट तक लाया और हमारा सामान पहचानकर नीचे उतार दिया. मेरी सहयात्रिणी का परिवार उसे लेने के लिये वहीं आकर खड़ा था. उन्होंने परस्पर अभिवादन किया. चलते समय उस महिला ने मेरा हाथ पकड़कर अभिवादन किया और कृतज्ञता स्वरूप स्नेह से मेरे गाल पर चुम्बन लिया. मैं उसके स्नेह से अभिभूत हो उठी.

अब उस युवक ने मेरे बेटे को वहाँ न देखकर मुझसे नम्बर लेकर अपने सेलफोन से मेरे बेटे देवर्षि के सेलफोन पर सम्पर्क किया जो कार पार्किंग में ट्रैफिक जाम में अटका हुआ था. देवर्षि कार लेकर सीधे एयरपोर्ट पर आ गया और उस युवक ने मेरा सामान लाकर कार में रख दिया. मैं कमर सीधी करती हुई बेटे की कार में आकर बैठ गई.

अभी भी मेरी स्मृति में उस अपरिचित महिला यात्री के स्नेह की सुगन्धि अवशिष्ट है. मैं नहीं जानती वह कौन थी? क्या नाम था? कौन सी भाषा-भाषी थी? किस देश की थी? किस धर्म की थी? जानती हूँ तो केवल यह कि न मानवता की भाषा होती है न स्नेह की परिधि.■

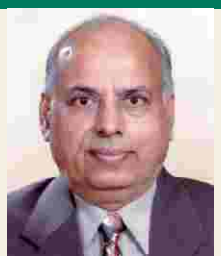

Suresh Chandra Jain
Chairman, State Expert Appraisal Committee, Govt. Of India, Ministry of Environment.
Former IAS Officer Govt. of M.P.
30, Nishat Colony, Bhopal (M.P.) - 462 003 India E-mail : scjain17@gmail.com

सद्विचार

जीवन दर्शन और जीने की कला

> अवसाद का भावनात्मक प्रभाव भी अवसाद की समस्या के समाधान में सहयोग प्रदान करता है. प्रगति के नये रास्ते सुझाता है. नये रास्ते पर चलने के लिए और सफलता प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है.

वर्तमान युवा पीढ़ी असफलता मिलने पर ऊब जाती है और अवसाद में डूब जाती है. मादक सपनों में डूबी किशोर पीढ़ी अवसाद ग्रस्त हो जाती है. प्रतियोगिता परीक्षा में असफल होने पर उपजे अवसाद से पीड़ित हो जाती है. यह दुखद है अब अवसाद दिन-प्रतिदिन आत्म घातक होता जा रहा है.

अवसाद के संकेत मिलते ही उसे नियंत्रित करने का पूरा प्रयास करें. अवसाद हमारे व्यक्तित्व को कुचले इसके पूर्व ही उसे कुचलना आवश्यक है. अवसाद कालीन परिस्थितियों को भी उपयोगी एवं लाभदायक बनाऐं. निराशाजनक परिस्थितियों को सकारात्मक बनाएँ. नकारात्मक विचार पर विजय प्राप्त करने के लिए ठोस एवं दृढ़ इच्छाशक्ति विकसित करें और अपने आत्म विश्वास में वृद्धि करें. अवसाद झेलना बहुत कठिन होता है तदपि अवसाद से हमारे कौशल में वृद्धि होती है. हमारी आतंरिक प्रवृत्तियों में सकारात्मकता आती है. अवसाद यह संकेत देता है कि हमारे जीवन में परिवर्तन आवश्यक है. शारीरिक दर्द की भांति अवसाद मानसिक बीमारी का संकेतक हैं. अवसाद के माध्यम से हमारा मस्तिष्क हमें यह स्वीकार करने के लिए प्रेरित करता है कि हमारी वर्तमान मानसिक परिस्थितियाँ संतोषजनक नहीं है और इनमें समुचित परिवर्तन आवश्यक है. इन परिस्थितियों को नई दिशा देना आवश्यक है.

अवसाद का भावनात्मक प्रभाव भी अवसाद की समस्या के समाधान में सहयोग प्रदान करता है. प्रगति के नये रास्ते सुझाता है. नये रास्ते पर चलने के लिए और सफलता प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है. अवसाद को नियंत्रित करने की दृष्टि से हम अपने प्रत्येक नकारात्मक विचार को पूरी शक्तिपूर्वक अपने मन से हटा दें. नकारात्मक भावनाओं एवं अवसाद के कारणों का परीक्षण करें. विश्लेषण करें. इससे हमारे विचार सघन और केन्द्रीभूत हो जाते हैं. अवसाद से ग्रसित व्यक्ति बेहतर विश्लेषणात्मक ढंग से एवं पूर्णता से कार्य करने लगता है. अपने लक्ष्यों के प्रति पूर्णतः केन्द्रित होकर सफलता प्राप्त करने लगता है. बेहतर जीवन जीने लगता है. अपनी कमियों और निर्बलताओं के प्रति अधिक जागरूक और सहनशील हो जाता है. अपने लक्ष्यों में विवेक पूर्ण ढंग से समुचित संशोधन करने लगता है. छोटी-मोटी सफलता पर आनंद लेने लगता है. ऐसा व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का बेहतर जानकार हो जाता है. अवसाद हमें अपने व्यक्तित्व में ही नये स्रोतों की खोज के लिए प्रेरित करता है. ऐसी आशा और शक्ति को जन्म देता है जो हमें सदैव सहयोग देती रहती है.

कष्टमय बचपन, माता-पिता की मौत, समुचित लालन-पालन का अभाव एवं मन में गहराई से अपराध भावना घर कर जाने के कारण कुछ व्यक्तियों के विचार निराशावादी हो जाते हैं और उनके व्यक्तित्व को अवसाद घेर लेता है. प्रत्येक व्यक्ति की सोच, नजरिया और व्यक्तित्व स्वतंत्र होते हैं. एक-दूसरे से अलग होते हैं. प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके जीवन की खुशी, दुख, सफलता और असफलता का प्रतिविम्ब होता है. कुछ लोगों का व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है. वे आस-पास मौजूद व्यक्तियों को आकर्षित और सम्मोहित कर लेते हैं. स्वयं खुश रहते हैं. दूसरों को भी हंसाते रहते हैं. अपने चारों तरफ के वातावरण को खुशहाल बना देते हैं. आसानी से मित्र बना लेते हैं. इसके विपरीत कुछ लोग सदैव गंभीर, निराश और दुखी नजर आते हैं.

अवसादग्रस्त व्यक्ति प्रायः दुखी रहते हैं. उनमें आत्म सम्मान और आत्म विश्वास की कमी होती है. उनके जीवन में कोई आशा या खुशी नहीं रहती है. उन्हें प्रकृति से कोई लगाव

नहीं होता है. निराशावादी विचारों के कारण उनके संबंध परिवार और समाज से बिगड़ जाते हैं. वे अपने कार्यों में प्रायः असफल होते हैं. ऐसे व्यक्ति अपने कार्य में और अपने व्यवहार में स्वयं ही गलतियां खोज कर दुखी एवं परेशान होने लगते हैं. स्वयं को दीन-हीन एवं कमजोर समझने लगते हैं.

निराशावादी व्यक्तियों में गंभीर रूप से अवसादग्रस्त या मानसिक रूप से अस्त-व्यस्त होने की प्रबल संभावना होती है. ऐसे व्यक्ति स्वयं दुखी रहते हैं तथा दूसरों को दुखी करते रहते हैं. उन्हें अपनी भावनाओं पर नियंत्रण करने की कला सीखना आवश्यक होता है. अवसादग्रस्त व्यक्ति का जीवन प्रायः दुखमय और असफल हो जाता है. उनके पारिवारिक एवं सामाजिक संबंध प्रगाढ़ नहीं हो पाते हैं. वे हर क्षेत्र में पिछड़ने लगते हैं. उनका व्यक्तित्व बिखरने लगता है. वे समाज में सम्मान प्राप्त नहीं कर पाते हैं.

यह जानकर भले ही हैरानी हो लेकिन अगर हम किसी भी तरह के अवसाद में हैं तो नाखून इस बात की सूचना देते हैं. किसी भी प्रकार का शारीरिक या मानसिक कष्ट होने पर नाखूनों में निशान बन जाते हैं. नाखूनों में आढ़े-टेढ़े गड्ढे बन जाते हैं. भावनात्मक परेशानी होने पर ऐसे निशान बन जाते हैं. इस तरह के गड्ढे शरीर में पोषक तत्वों की कमी से भी हो जाते हैं. हीमोग्लोबिन (आयरन) की कमी के कारण भी नाखूनों पर गड्ढे पड़ जाते हैं.

यह आवश्यक है कि अवसादग्रस्त व्यक्ति आत्म विश्लेषण करें. अपने अर्द्धचेतन मन में समाये नकारात्मक विचारों को दृढ़ इच्छा पूर्वक बाहर निकाले. अपने मन को सकारात्मक विचारों से भरें. नकारात्मक विचारों को सकारात्मक विचारों में बदलने का प्रयास करें. स्वयं को नकारात्मक विचारों और भावनाओं से बचाएं रखें. तनावमुक्त रहे. जीवन के हर पल में खुशी की तलाश करें. असफलताओं से निराश न हो. आत्म विश्वास बनाएं रखें. जीवन की बुराईयों को भुला दें. अच्छाईयों को याद रखें. बुरे कार्यों को भूल जाये. अच्छे कार्यों को याद रखें. व्यस्ततम जीवन में भी अपनी इच्छा पूर्ति के लिए समय निकाले. मनोरंजन के लिए समय निकाले. अपने मन में सकारात्मक विचारों - मैं खुश हूँ, मैं सक्षम हूँ, मैं सुखी हूं - को बार-बार दोहराते रहे. ऐसा प्रयास करने से नकारात्मक विचार दूर हो जाते हैं. निराशा के स्थान पर आशा की किरणें दिखाई देने लगती हैं. व्यक्तित्व में सकारात्मक परिवर्तन होने लगता है.

अवसादग्रस्त व्यक्तियों के परिवारजनों का यह महत्वपूर्ण कर्तव्य है कि वे अवसादग्रस्त व्यक्तियों को अच्छे व्यवहार और अच्छे कार्यों का महत्व समझायें. उनमें आत्म विश्वास उत्पन्न करें. उनकी निराशा दूर करें. उनके मन में समाहित कुन्ठाओं और हीन भावनाओं का पता लगाकर दूर करे.

श्रीमती आशा मोर

जन्म : २५ अक्टूबर १९६० में झाँसी, उ.प्र., शिक्षा : बी.एस-सी., २००२ में ट्रिनिडाड अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन तथा २००३ में सूरीनाम में सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लिया. पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित. सम्प्रति : मैनेजिंग डायरेक्टर सेन्ट क्लैएर, एम. आर.आई. सेन्टर, ट्रिनिडाड और टोबेगा. सम्पर्क : asha.mor1@gmail.com

लघुकथा

यह कैसा विकल्प है?

राघव के पास इतने सारे खिलौने और चॉकलेट देखकर मनु चॉकलेट खाने की लालसा से राघव के पास आया और बात करने लगा.

'राघव, ये कौन थे, जो तुम्हें इतने सारे खिलौने और चॉकलेट दे कर गये.'

'मेरे पापा थे.'

'ये तुम्हारे पापा थे, तो फिर तुम यहाँ अनाथाश्रम में क्यों रहते हो.' मनु ने आश्चर्य से पूछा.

'मुझे पता नहीं.' राघव ने झल्लाते हुये कहा.

'तुम्हारे पापा तो कार से आए थे.'

'हाँ तो.' राघव को गुस्सा आ रहा था.

'तुम लकी हो, मेरे तो मम्मी पापा दोनों ही नहीं हैं, तुम्हें पता मेरे मम्मी पापा दोनों कार एक्सिडेंट में मर गए.' मनु ने भोलेपन से कहा.

आठ बर्ष का राघव, जो कि परिस्थितियोंवश कुछ ज्यादा ही परिपक्व हो गया था, चुपचाप मनु के भोले चेहरे की ओर देख रहा था, जो कि भाव विहीन था, उसकी ललचाई नजरें तो बस चॉकलेट के डिब्बे पर अटकी हुयी थी.

एक साल में कभी कोई उससे मिलने नहीं आया था, न ही कोई उसके लिए खिलौने और चॉकलेट ले कर आया था. धीरे-धीरे मनु के दिमाग से माँ-बाप की यादें धुंधली होने लगी थी. इस समय राघव के हाथ में चॉकलेट का डिब्बा देखकर मनु को अपनी माँ की याद आ गयी, तो उसने राघव से पूछा -

'और तुम्हारी मम्मी' पर उसकी नजर अभी भी राघव के हाथ में चॉकलेट के डिब्बे पर थी.

'मम्मी ने दूसरी शादी कर ली', राघव ने गर्दन झुकाकर, खिलौनों को एक तरफ ठेलते हुये कहा.

'अब पापा भी दूसरी शादी कर रहे हैं.' राघव चॉकलेट का डिब्बा मनु को थमाकर बुझे हुये कदमों से धीरे-धीरे दूसरे कमरे में चला गया.

■

मनोज कुमार श्रीवास्तव

विचारशील लेखक के तौर पर ख्याति. गद्य एवं पद्य पर समान अधिकार. कविता के संसार से अलग, उनका गद्य विचार जगत की गहराईयों में जाता है. अपनी परम्परा से निरंतर संवाद करता इनका लेखन आधुनिकता के प्रचलित मुहावरों से भी बाहर जाता है. प्रकाशित कृतियां : कविता संग्रह - 'मेरी डायरी से', 'यादों के संदर्भ', 'पशुपति', 'स्वरांकित' और 'कुरान कविताएँ'. 'शिक्षा के संदर्भ और मूल्य', 'पंचशील वंदेमातरम्', 'यथाकाल' और 'पहाड़ी कोरबा' पर पुस्तकें प्रकाशित. 'सुन्दरकांड' के पुनर्पाठ पर छह खण्ड प्रकाशित. दुर्गा सप्तशती पर 'शक्ति प्रसंग' पुस्तक प्रकाशित. सम्प्रति : १९८७ संवर्ग के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी.

सम्पर्क : shrivastava_manoj@hotmail.com

क्या तुलसी ने आतंक का प्रत्युत्तर सुन्दरकाण्ड में दिया

क्या राम के रूप में वाल्मीकि और तुलसी ने आतंक के विरुद्ध एक कल्चरल मोटिफ़ गढ़ा था? क्या वाल्मीकि और तुलसी यह महसूस करते थे कि मनोविकृत राक्षसों के आक्रमणों के सामने हम तब तक वल्नरेबल बने रहेंगे जब तक कि हम अपनी संस्कृति के इम्यून सिस्टम को मजबूत नहीं बनाते. राक्षसों का आतंक मूलतः संस्कृति पर आक्रमण है. अरण्यकांड के छठे सर्ग में १८वें श्लोक में वाल्मीकि कहते हैं- **'इन भयानक कर्म करने वाले राक्षसों ने इस वन में तपस्वी मुनियों का जो ऐसा भयंकर विनाशकांड मचा रखा है, वह हम लोगों से सहा नहीं जाता है.'** वह एक विराट आर्यावर्त की तुलना में भले ही छोटा हो, लेकिन वह ऐसा वायरल इन्फेक्शन है जो हमारे सांस्कृतिक प्रतिरोध-तंत्र को कमजोर कर ही देगा. राक्षसों का अल्पविकसित सांस्कृतिक व्यक्तित्व ही यह भी सुनिश्चित करेगा कि अन्य सुसंस्कृत देश भी सांस्कृतिक रूप से तहस-नहस हो जाएं. चूंकि वे स्वयं एक कल्चरल कार्नर में पड़ गए हैं- स्वयं की अहंमन्यता के चलते, तो दूसरे क्यों सांस्कृतिक दरिद्रता के शिकार नहीं बना दिए जाएं. अब्दाल सलाम फराज, जो एक शुरुआती आतंकवादी था, ने अपने पैंफलेट में क्या कहा था? "The neglect of jihad has caused the current depressed position of Islam.' क्या यह स्थिति शिक्षादि मानव विकास लक्ष्यों का पीछा सफलता से न करने से पैदा होती है या युद्ध न करने से? फिर तुलना भी यदि हो तो उसकी परिणति दूसरे की रेखा छोटी करने में क्यों हो? लेकिन राक्षसी सोच दूसरी ही होती है. उन्हें लगता है कि तोड़-फोड़, हत्या, लूट-पाट,

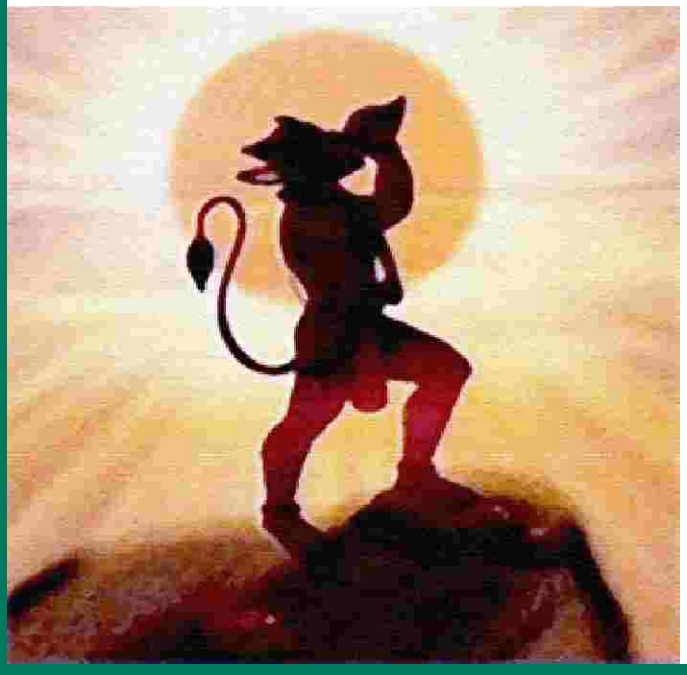

> वाल्मीकि रामायण की शुरुआत में ही कहा गया कि 'दुष्टजन इस संसार में बहुत से जीवों को बिना किसी अपराध के ही पीड़ा देते हैं.' आतंकी राक्षस यही कर रहे हैं.

रक्त वर्षा के जरिए उस भारतभूमि को क्यों न अपवित्र किया जाए जिसका सांस्कृतिक अभ्युदय राक्षसों में गहरी आत्महीनता का अवबोध पैदा करता है. राक्षसों के खुद के कठोर फिक्सेशन होंगे, वे उसी कारण से सांस्कृतिक स्टेगनेशन झेल भी रहे होंगे, लेकिन खुद को बेहतर बनाने की जगह वे दूसरों को नष्ट करना चाहेंगे. रावण के बारे में वाल्मीकि पन्द्रहवें सर्ग में ८वें श्लोक में यही कहते हैं कि **'वह दुष्टात्मा जिनको कुछ ऊंची स्थिति में देखता है, उन्हीं के साथ द्वेष करने लगता है.'** चूंकि उन्होंने हमेशा शस्त्र की भाषा में विश्वास किया है, चूंकि उनके यहां बौद्धिक रूप से शास्त्रार्थ में सर्वविजयी अगस्त्य या कौंडिन्य कभी नहीं हुआ जो देश देशान्तरों में सांस्कृतिक प्रतिभा का प्रकाश करे, चूंकि राक्षसों में 'ग्रे मैटर' की कमी है, इसलिए वे अपना संतोष रक्त वर्षा से ही प्राप्त करेंगे. वाल्मीकि रामायण के तीसवें सर्ग में श्लोक

११-१२ देखें **'राक्षस सब ओर अपनी माया फैलाते हुए यज्ञमंडप की ओर दौड़े आ रहे थे. उनके अनुचर भी साथ थे. उन भयंकर राक्षसों ने वहां आकर रक्त की धाराएं बरसाना आरंभ कर दिया.'** वाल्मीकि बालकांड के २०वें सर्ग में यही बताते हैं : **'वह महाबली निशाचर इच्छा रहते हुए भी स्वयं आकर यज्ञ में विघ्न नहीं डालता किंतु उसी की प्रेरणा से दो महान बलवान राक्षस मारीच और सुबाहु यज्ञों में खलल डाला करते हैं.'** मारीच और सुबाहु क्या ऐसे आतंकवादी हैं जिनका रावण ने इन्डाक्ट्रिनेशन किया है. उनके दिमाग में जहर भरा है. आतंक के उद्देश्यों के लिए एजेंट नियुक्त किए हैं जिन्हें न केवल ब्रेनवाश किया गया है बल्कि जिन्हें जन्म से ही नफ़रत और हिंसा के लिए ही प्रोग्राम किया गया है. कहने को उनका नाम रक्ष-संस्कृति है लेकिन करते वे आक्रमण हैं और आक्रमण नॉन-कम्बेंटेन्ट्स पर होगा, सिविलियंस पर होगा. उन पर होगा जो यज्ञ कर रहे हैं. योद्धाओं पर नहीं होगा. युद्ध में तो वे बार-बार हारे हैं. कभी सहस्रबाहु से हारे हैं, कभी बाली से हारे हैं, कभी शिव के अंगूठे तले दब गए हैं. इसलिए अब वे पारंपरिक अर्थों में युद्ध नहीं करते, वे माया-युद्ध करते हैं. माया-युद्ध का सही अनुवाद क्या प्रॉक्सीवॉर होगा? उनकी सफलता इसी बात पर निर्भर है कि उनके शिकार माया-युद्ध नहीं कर सकते हैं. इसलिए वे सिविलियन सेटलमेंट्स को जितना लक्ष्य बनाते हैं, उतना उनको जीत का विश्वास होता चला जाता है. याद कीजिए कि राक्षसों के द्वारा पीड़ित एक क्षेत्र का नाम वाल्मीकि ने जनस्थान रखा है. जनस्थान यानी सिविलियन सेटलमेंट. उन पर खर और दूषण ने कब्जा जमा लिया था, जहां से रावण के माया-युद्ध की कार्रवाइयां चलती रहती थीं. यह माया-युद्ध असल में विदेशी शक्ति का गुप्ताभियान (कवर्ट आपरेशन) है. तमस की शक्तियां ब्लैक आपरेशन नहीं करेंगी तो क्या करेंगी?

> *हम अक्सर पढ़ते रहते हैं कि आतंकवादी नकली पहचानों (फेक आइडेन्टिटी) का इस्तेमाल करते हैं. स्वयं अमेरिका में ९/११ के बाद अल-अदरिस जैसे लोगों का पता चला जो नकली परिचय पत्र बनाने और बेचने का धंधा करते थे.*

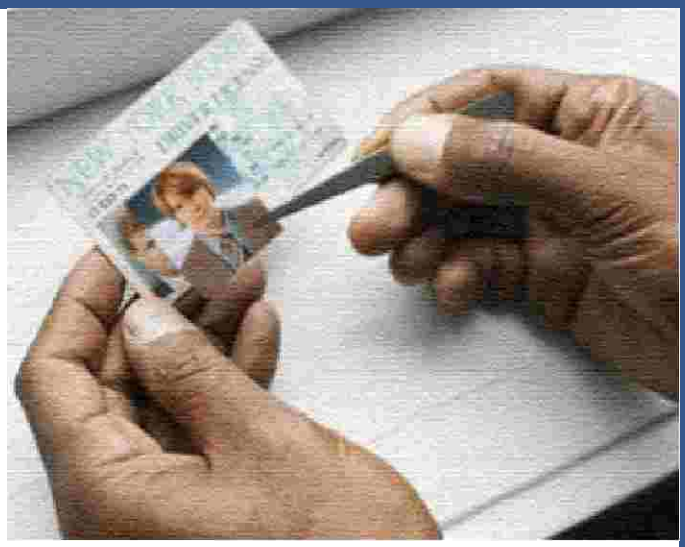

आतंक की ताकतों की एक विशेषता निर्दोषों की हत्याएं हैं. वे उस न्यूटोनियम भौतिकी के खिलाफ विद्रोह करती हैं जो कार्य-कारण के सिद्धांत पर आधारित है. वह एक तरह की झक है जो 'कारण' के अनुशासन को भंग करने के विरुद्ध जिद बांधे हुए है. उसे स्वैराचार में एक तरह का सशक्तिकरण महसूस होता है. एक घटना (कारण) और दूसरी घटना (कार्य) के बीच आवश्यक व प्रत्यक्ष पारिणामिक रिश्ता न होने पर भी उसे कर गुजरने में आतंकी को लगता है कि वह खुदा हो गया क्योंकि इतनी यदृच्छता तो बस उसी भगवान के लिए संभव है. उसको यह भी भरम हो जाता है कि वह खुद ही जैसे एक डिवाइन मिशन पर है. रावण खुद को खुदा ही समझने लगा था. इसलिए वह निरपराधियों को मारता रहता है. वाल्मीकि रामायण की शुरुआत में ही कहा गया कि **'दुष्टजन इस संसार में बहुत से जीवों को बिना किसी अपराध के ही पीड़ा देते हैं.'** आतंकी राक्षस यही कर रहे हैं. बाणभट्ट ने कादंबरी में यही तो कहा था : **'अकारणाविष्कृत-वैरदारुणादसज्जनात् कस्य भयं न जायते'** अकारण शत्रुता करने वाले उन भयंकर दुष्टों से कौन नहीं भयभीत होगा? दरअसल कारण के साथ की गई हत्या भी अपराध है, क्रूर है, निंदनीय है लेकिन वह अस्तित्व और सभ्यता के आस्थामूलों को उतने विकट तरीके से नहीं हिलाती, जितनी अकारण की गई हत्याएँ. हमने अपनी सभ्यता को तर्क और कारण की नींवों पर आधारित किया है. आतंकवाद जिस क्षण एक अबोध बच्चे को मारता है, उसे मारता है जिसे कम से कम उससे निजी तौर पर कोई गिला नहीं था तो वह चीज़ एक साभ्यतिक (सिविलाइजेशनल) सिहरन पैदा करती है. मत्स्यपुराण में इसीलिये कहा गया था : **'विधाग्नि-सर्पशस्त्रेभ्यो न तथा जायते भयम्/अकारणं जगद्बैरिखले-भयो जायतेयथा..'** कि विष, अग्नि, सर्प तथा शस्त्र से भी संसार को उतना भय नहीं होता जितना भय **बिना कारण संसार के शत्रु** दुष्टों से. अब ऋषि-मुनियों का अधिकतम दोष क्या रहा होगा? यदि धर्म को हम प्राचीन कानून मर्यादा मान लें तो ये ऋषि-मुनि मुख्यतः धर्म-भीरु लोग रहे होंगे. तत्कालीन ऋषि-मुनियों को मारना वस्तुतः लॉ-अबाइडिंग

सिटीजन्स को, कानूनी भीरु नागरिकों को मारना रहा होगा. आतंकी के लिए अपनी दुष्ट और भ्रांत मानसिकता के चलते ये नागरिक एक शून्य से अधिक नहीं. ड्यूवाल एवं स्टोल ने लिखा है : "Motives are entirely irrelevant to the concept of political terrorism. Most analysts fail to recognise this and hence, tend to discuss certain motives as logical or necessary aspects of terrorism. But they are not. At best, they are empirical regularities associated with terrorism. More often they simply confuse analysis.'

इन दिनों हम अक्सर पढ़ते रहते हैं कि आतंकवादी नकली पहचानों (फेक आइडेन्टिटी) का इस्तेमाल करते हैं. स्वयं अमेरिका में ९/११ के बाद अल-अदरिस जैसे लोगों का पता चला जो नकली परिचय पत्र बनाने और बेचने का धंधा करते थे. ८०० डॉलर प्रति कार्ड की दर पर वह १८ कार्ड प्रतिदिन बेचा करता था. ९/११ के दो अपराधियों आलोमारी और अल्घमाडी दोनों ने वर्जीनिया निवासी होने के प्रमाण पत्र हासिल कर लिए जबकि वे मेरीलैंड के मोटेल में रह रहे थे. अलकायदा का ट्रेनिंग मैनुअल आतंकियों को ऐसा

> *क्यों आज अक्षरधाम, संकटमोचन मंदिरों, इस्लामाबाद के प्रोटेस्टेंट इंटरनेशनल चर्च, अल गरीबा के साइनेगॉग, कश्मीर के मंदिरों आदि पर होने वाले हमलों को देखकर राक्षसी हिंसाचार की वही याद आती है जो तुलसी ने बालकांड में की.*

रूप धारण करने को कहता है जिससे वह 'इस्लामी ओरिएंटेशन का नहीं लगे.' अभी २० सितंबर, २००८ को अखबारों में दिल्ली पुलिस के हवाले से खबर थी कि आतंकवादियों ने फर्जी वोटर आइडेन्टिटी कार्ड हासिल कर लिए हैं और देशभर में नकली पहचान के साथ घूम रहे हैं. कहीं होटल में किसी नाम से रह रहे हैं, कहीं प्रोफसर और कहीं छात्र बनकर. ब्रिटेन में 'द सन' ने महज ७५० पौंड में एक फर्जी आइडेन्टिटी कार्ड हासिल कर लिया था, सिर्फ यह बताने के लिए कि ब्रिटेन में रूप बदलकर रहना कितना आसान है. अरण्यकांड में वाल्मीकि दसवें सर्ग के दसवें श्लोक में यह कहते हैं : **'तब उन सभी ने मिलकर अपना मनोभाव इन वचनों में प्रकट किया- श्री राम! दंडकारण्य में इच्छानुसार रूप धारण करने वाले बहुत से राक्षस रहते हैं. उनसे हमें बड़ा कष्ट पहुंच रहा है, अतः वहां उनके भय से आप हमारी रक्षा करें.'** क्या ये इच्छानुसार रूप धारण करने वाले राक्षस उसी तरह के आइडेन्टिटी फ्रॉड कर रहे थे जैसे आज हो रहे हैं? आतंकी कहता है कि वह अपनी पहचान-स्थापना के लिए संघर्ष कर रहा है, लेकिन सच यह है कि अपनी पहचान छुपाए या बदले बिना वह कहीं भी आतंक फैला नहीं सकता. तुलसी ने इन आतंकियों के बारे में इसलिए कहा : **'काम रूप जानहिं सब माया/सपनेहु जिन्ह के धरम न दाया.'** एक अन्य जगह वे लिखते हैं : **'करहिं उपद्रव असुर निकाया/नाना रूप धरहिं करि माया.'** हनुमान आतंक का जब काउंटर खड़ा करते हैं तो वे भी द्रुत रूप परिवर्तन करते हैं. **'मसक समान रूप कपि धरी', 'अति लघु रूप धरेउ हनुमाना'** आदि. क्या यह जैसे को तैसा की रणनीति थी? प्रति-आतंकवाद गणवेशधारी प्रतिरोध नहीं है.

आतंकवाद क्या एक विजयिनी रणनीति रही है? आतंकवाद की परिणतियां क्या कभी उसके अंतिम लक्ष्य की ओर पहुंचाती हैं? क्या आतंकवाद कभी एक एफेक्टिव हथियार के रूप में सिद्धि पा पाया है? आतंकवाद की सफलता दर अत्यन्त कम रही है. एक अध्ययन में पाया गया कि २८ आतंकी दलों के ४२ नीतिगत लक्ष्यों में से सिर्फ ३ ही किसी हद तक पूरे हो सके हैं. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के उनतीसवें सर्ग के छठवें श्लोक में श्रीराम राक्षस खर से पूछते हैं:- **'राक्षस! दंडकारण्य में निवास करने वाले तपस्या में संलग्न धर्मपरायण महाभाग मुनियों की हत्या करके न जाने तू कौन सा फल पाएगा ?'**

क्यों आज अक्षरधाम, संकटमोचन मंदिरों, इस्लामाबाद के प्रोटेस्टेंट इंटरनेशनल चर्च, अल गरीबा के साइनेगॉग, कश्मीर के मंदिरों आदि पर होने वाले हमलों को देखकर राक्षसी हिंसाचार की वही याद आती है जो तुलसी ने बालकांड में की : **'द्विजभोजन मख होम सराधा/सब कै जाइ**

करहु तुम्ह बाधा' यज्ञ, हवन और श्रद्धा - इन सबमें जाकर तुम बाधा डालो. **'देखत जग्य निसाचर धावहिं. करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं'**: यज्ञ देखते ही राक्षस दौड़ पड़ते थे और उपद्रव मचाते थे, जिससे मुनि बहुत दुःख पाते थे. उस जमाने में यज्ञ से ऊर्जा मिलती थी तो आतंकी उसे बाधित (disrupt) करते थे. नए जमाने में इनर्जी ग्रिड से ऊर्जा मिलेगी तो उसे करेंगे. मसलन ८० के दशक में दुनियाभर में इनर्जी ग्रिड्स पर ८००० हमले रिपोर्ट हुए. अल साल्वाडोर में अकेले २४७७ आक्रमण इनर्जी ग्रिड्स पर हुए. इसके अलावा पाइपलाइनों पर भी हमले हुए. आसाम की गैस पाइपलाइनों से लेकर कोलंबिया तक. आतंकी राक्षस प्रतिद्वंद्वियों के ऊर्जा-चक्रों पर आक्रमण करना हमेशा से चाहते रहे. करते रहे.

यह नहीं कि राक्षस संस्कृति के ध्वजावाहकों को मारकर ही संतुष्ट हो जाएंगे कि वे सिर्फ अक्षरधाम, संकटमोचन जैसी संस्कृति की सनातन पहचान या ताज, ओबेराय, नरीमन हाउस जैसे नए उभरते हुए युवा और ग्लोबल भारत के बड़े प्रतीकों को लक्ष्य कर ही उपद्रव मचाएंगे बल्कि जैसा कि वे पहले भी सिद्ध कर चुके हैं कि वे बाजारों में और सड़कों पर चल रहे, रेलों में यात्रा कर रहे आम लोगों के भी दुश्मन बने रहेंगे. रामायण के चौथे अध्याय में बाईसवें श्लोक में वाल्मीकि यही कहते हैं कि **'जो सब प्रकार के संग से रहित है, उसे भी दुरात्मा मनुष्य सताया करते हैं.'** अल कायदा ट्रेनिंग मैनुअल में अपहृत व्यक्ति को निस्संग करने की रणनीति के बारे में यही बताया गया है : "Isolate the victim socially, cutting him off from public life, placing him in solitary confinement.' यह निस्संग आदमी- यह सर्वहारा- यह आम आदमी राक्षसों के आतंक का शिकार होता रहता है, इसे बालकांड के १५वें सर्ग में वाल्मीकि ने रावण के बारे में कहते हुए स्पष्ट किया : **'उसने तीनों लोकों के प्राणियों का नाकों दम कर रखा है'** (श्लोक ८) तैंतीसवें श्लोक में उन्होंने रावण के बारे में फिर कहा कि **'वह तीनों लोकों को रुलाता है.'** बीसवें सर्ग में विश्वामित्र कहते हैं 'वह निशाचर तीनों लोकों के निवासियों को अत्यन्त कष्ट दे रहा है. आतंक किसी एक देश को कष्ट नहीं देता. वह इस उस किसी भी देश को क्षति पहुंचा सकता है. वह सभ्यता की अवधारणा मात्र पर आक्रमण है. सन् २००२ में स्टेट आफ द यूनियन भाषण में अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने जो कहा था, उसके शब्द कितने समान हैं : "Thousands of dangerous killers, schooled in the methods of murder, often supported by outlaw regimes, are now spread **throughout the world,** set to go off without warning.'

आतंकवादियों का असल कल्ट वायलेंस ही रहा है और यदि किसी को उस बारे में थोड़ी सी भी गलतफहमी है तो उसे अलकायदा का ट्रेनिंग मैनुअल पढ़ा दिया जाना चाहिए. उसमें शारीरिक यंत्रणा की कई विधियां दी गई हैं, उन्हें पढ़िए और फिर तुलसीदास द्वारा किए गए राक्षसों के वर्णन को: **'हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति'** कि हिंसा पर ही जिनकी प्रीति है, उनके पापों का क्या ठिकाना. अलकायदा के ट्रेनिंग मैनुअल के शब्दों को इसके सामने रखें : "It knows the dialogue of bullets, the ideals of assassinations, bombing and destruction, and the diplomacy of the canon and the machine gun. Islamic governments have never and will never be established through peaceful solutions and cooperative councils.' हिंसा पर प्रीति की इससे बड़ी अभिव्यक्ति क्या होगी? ये आतंकी राक्षस धर्म-परिवर्तन की मांग नहीं करते हैं, वे उसके लिए मजबूर भी नहीं करते हैं. उनका उद्देश्य परिवर्तन नहीं है, विनाश है. उनका लक्ष्य रक्ष संस्कृति में विनियोजन नहीं है, बल्कि प्रतिद्वंद्वी समझ ली गई संस्कृति को गंभीर क्षति पहुंचाने का है : **'जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला/सो सब करहिं बेद प्रतिकूला.'**

ऐसी स्थिति में निदान क्या है? वाल्मीकि और तुलसीदास का उत्तर है; यदि सुंदरकांड कोई प्रमाण है तो, कि आतंकवाद को उसके घर में घुसकर मारो. राम राक्षसों के आतंकवाद को एक पल के लिए भी निगोशिएबल नहीं मानते, वे उसे जड़ मूल से उखाड़ने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं. धरती को निशिचर हीन करने की प्रतिज्ञा. लंका आतंक का स्रोत है. यह कोई 'अकेले भेड़िए का आतंकवाद' (lone wolf terrorism) नहीं है. खर, दूषण, त्रिशिरा, सुबाहु, मारीच कोई वैयक्तिक मनोरोगी नहीं हैं, वे सब स्लीपर सेल्स हैं- या स्लीपर नहीं हैं, (सिवाय आध्यात्मिक अर्थों में), बल्कि बहुत सक्रिय हैं. लंका इनका केन्द्रीय कमांड मुख्यालय है. ये लोग अपने विकेन्द्रित काम करें भी तो भी उनकी अंतिम शरण्य और निष्ठा वही राक्षसी लंका है. तीस्ता सीतलवाड़ टाइपों को इसमें कोई राज्य प्रायोजित आतंकवाद नहीं नज़र आता कि जब मुंबई से

> *हनुमान का लंका-दहन तो राक्षसों के आतंकी ठियों को, उनके प्रशिक्षण कैंपों को वहीं घुसकर भस्मसात करना है. वह उतना प्रि-एम्प्टिव भी नहीं है जितना कि आतंक के विरुद्ध आजकल रूस, इस्त्रायल और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे 'चुने हुए' देश कर रहे हैं.*

'साधु अवग्या कर फलु ऐसा/जरइ नगर अनाथ कर जैसा.' क्या यह प्रति-आतंकवाद था? क्या कालिदास ने कुमारसंभव में यही कहा था : 'शाम्येत्प्रत्यपकारेण दुर्जनः' कि दुष्ट व्यक्ति प्रत्यपकार से ही शान्त होता है, उपकार से नहीं.

लेकर दिल्ली, जयपुर, बंगलुर में आतंकवादी राक्षसों की अमानुषिक कार्रवाइयां होती रहती हैं. राक्षसों के आतंकी हमले तब तक कारगर होंगे ही नहीं जब तक कि उन्हें हथियारों, पैसों, आसूचनाओं आदि के बारे में आश्वस्ति न रहे. लंका आतंक का निर्यात भी करती है और प्रायोजन भी. यदि कभी उसके आतंकियों की ज्यादा पिटाई पड़ जाए तो वे रोएंगे अपनी उसी सैंक्चुअरी में जाकर, जहां शूर्पणखा रोई थी- रावण के सामने. आतंकवाद लंका की स्टेट पॉलिसी का इंस्ट्रुमेंट है, वह लंका की कूटनीति का प्रतिस्थापक है. जिस तरह से ईरान ने हेजबोल्लाह को लेबनान में इस्तेमाल किया, रावण मारीच और सुबाहु, शूर्पणखा-खर-दूषण-त्रिशिरा का इस्तेमाल करता है. रावण राम से युद्ध नहीं शुरू करता, वह तो सिर्फ उकसावा देता है. तय तो राम को करना है कि क्या युद्ध किया जाए, अभेद्य लंका के विरुद्ध. रावण की स्वर्ण की लंका 'ओनरशिप आतंकवाद' का अच्छा उदाहरण है. अकूत पैसा है आतंक के प्रायोजक राज्य के पास. ओसामा एक सऊदी करोड़पति है, दाउद इब्राहिम के पास तमाम तरह का 'गंदा पैसा' है. टाइगर मेमन, अयूब मेमन, छोटा शकील किसके पास पाप की कमाई की कमी है? जब दुनिया में- समकालीन दुनिया में- आतंकवाद के शुरुआती दिन थे, कार्लोस द जैकाल ने वियना में तेल उत्पादक देशों के ११ तेल मंत्रियों का अपहरण कर करोड़ों डॉलर की फिरौती प्राप्त की थी. लंका में भी बहुत पैसा था. इसलिए वाल्मीकि ने लंका का सामान्य और सर्वोभयनिष्ठ दहन से ज्यादा उन सब बड़े राक्षसों के नाम लिए हैं जो 'ओनरशिप टेररिस्ट' हैं- रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र, राक्षस रोमश, रणोन्मत्त मत्त, विद्युज्जिह, हस्तिमुख, कराल, विशाल, शोणिताक्ष, कुंभकर्ण, मकराक्ष, नरान्तक, कुंभ, दुरात्मा निकुंभ, यज्ञशत्रु और ब्रह्मशत्रु. हनुमान इन सबके घरों में जा जाकर आग लगाते हैं. इनकी नामावली भी अपने आप में काफी अर्थवती है. लंका के 'कनक कोट' दरवाजों और 'स्वर्णिम महलों' की चर्चा शास्त्रों में बहुत की गई है. लेकिन उसी का कड़वा सच यह भी है कि लंका उस समय का 'दुष्ट राज्य' (Rogue state) थी. वहां से दुनिया के अलग-अलग स्थानों पर आक्रमण होते रहते थे. यदि दुष्ट राज्य की परिभाषा अवज्ञाकारी, उपद्रवकारी, स्वैराचारी, हिंसक राज्य के रूप में की गई है, तो लंका तब उसे चरितार्थ करती ही थी. जिस तरह से नोम चौम्स्की के अनुसार दुष्ट राज्य को अपनी विश्वसनीयता बनाए रखने के लिए कुछ औपचारिकताएं करनी ही पड़ती हैं, वैसे ही तत्कालीन समय में था जब रावण अपनी विश्वसनीयता के लिए शिव की दुहाई देता था या जैसे आज के दुष्ट राज्य में खुदा के नाम पर किया जा रहा है. लेकिन जैसे कैलाश हिलाने को भी यही दुष्टता प्रस्तुत रहती थी, उसी तरह से खुदा को भी चेलैंज करने वाले लोग उसी मानसिकता में मौजूद थे. याद कीजिए, वो पंक्तियां : '**तुझको मालूम है लेता था कोई नाम तेरा/कुव्वते-बाजू-ए-मुस्लिम ने किया काम तेरा.**' एक प्रसिद्ध शायर ने कही हैं. खुदा पर भी शारीरिक शक्ति का अहसान. रावण भी शिव के पास इसी तेवर में जाता है. राम के साथ लंका-प्रायोजित आतंक की कोई मोरली रिलेटिविस्ट (नैतिक आपेक्षिकतावादी) तुलना उसी तरह नहीं थी जिस तरह से आज भारत की किसी आतंक-निर्यातक देश से नहीं है.

मुझे याद है कि कभी हिन्दी साहित्य के एक बुद्धिजीवी ने अपनी पत्रिका के संपादकीय में हनुमान के लंका दहन का उदाहरण देते हुए उन्हें इतिहास का प्रथम आतंकवादी कहा था. मेरे पास दकन क्रानिकल का दस जनवरी, २००२ का वह अंक आज भी है जिसमें इस संपादकीय की खबर बनाई गई थी. लेकिन संभवतः उन बुद्धिजीवी ने राक्षसी आतंक की यह पूरी पृष्ठभूमि नहीं पढ़ी होगी. उन्होंने नहीं पढ़ा होगा तुलसी का वह वर्णन '**जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं/नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं**' : जिस-जिस स्थान में वे गौ और ब्राह्मणों को पाते थे, उसी नगर, गांव और पुरवे में आग लगा देते थे.' तो उसकी परिणति यह होनी ही थी कि वह एक दिन आता : '**जरइ नगर भा लोग बिहाला/झपट लपट बहु कोटि कराला.**' हनुमान का लंका-दहन तो राक्षसों के आतंकी ठियों को, उनके प्रशिक्षण कैंपों को वहीं घुसकर भस्मसात करना है. वह उतना प्रि-एम्प्टिव भी नहीं है जितना कि आतंक के विरुद्ध आजकल रूस, इस्त्रायल और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे 'चुने हुए' देश कर रहे हैं. 'बुश सिद्धांत' यह था कि संयुक्त राज्य अमेरिका को अधिकार है कि अपने देश की आक्रामक तरीके से हिफाजत उन देशों के विरुद्ध करे जो आतंकवादी समूहों को शरण देते या मदद करते हैं. हनुमान की प्रतिक्रिया तो खतरे की बूं सूंघने की भी नहीं है, खतरों को झेलकर त्रस्त हो चुके लोगों की ओर से की गई प्रतिक्रिया है. स्वयं तुलसी ने इसे स्पष्ट किया : '**साधु अवग्या कर फलु ऐसा/जरइ नगर अनाथ कर जैसा.**' क्या यह प्रति-आतंकवाद था? क्या कालिदास ने कुमारसंभव में यही कहा था : '**शाम्येत्प्रत्यपकारेण दुर्जनः**' कि दुष्ट व्यक्ति प्रत्यपकार से ही शान्त होता है, उपकार से नहीं.■

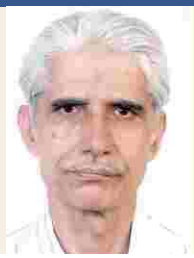

प्रभुदयाल मिश्र

ग्राम बर्माडांग, जिला टीकमगढ़ मध्यप्रदेश में जन्म. सागर विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. महर्षि महेश योगी के साथ आध्यात्मिक पुनरुत्थान आन्दोलन के सिलसिले में संपूर्ण भारत यात्रा. मध्य एशिया के तजाकिस्तान और उजवेगिस्तान गणराज्यों में गीता और भारतीय योग पर व्याख्यान. विभिन्न आध्यात्मिक एवं साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध. प्रकाशित कृतियां : सौंदर्यलहरी काव्यानुवाद, सबके लिए गीता, उत्तर पथ, मैत्रेयी, वेद की कविता (वैदिक सूक्तों का काव्यान्तर), वेद की कहानियाँ, तंत्र दृष्टि और सौन्दर्य सृष्टि, योग के सात आध्यात्मिक नियम, ईश्वर का घर है संसार. सम्मान : मध्यप्रदेश संस्कृत अकादेमी द्वारा 'व्यास सम्मान', मध्यप्रदेश लेखक संघ द्वारा 'पुष्कर सम्मान', पेंग्विन पब्लिशिंग हाउस द्वारा 'भारत एक्सीलेन्सी एवार्ड', वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद् द्वारा 'महाकवि केशव सम्मान'. सम्प्रति : अध्यक्ष, महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्, भोपाल.

सम्पर्क : ३५, ईडन गार्डन, राजा भोज मार्ग, भोपाल म.प्र. ४६२०१६ ईमेलः prabhu.d.mishra@gmail.com, www.vishwatm.com

वेद की कविता

माता भूमि और पृथिवी-पुत्र

(काव्यान्तर पृथिवी सूक्त)

(अथर्ववेद- कांड १२, सूक्त १, ऋषि-अथर्वा और देवता पृथिवी)

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निर्मापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः।१९।

अग्नि तुम में
भूमि
वनस्पति, औषधी में अग्नि
अग्नि जल में और विद्युत में
प्रस्तर, मनुज में भी अग्नि
धेनु, घोड़े आदि सब में
अग्नि है सर्वत्र

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्व अन्तरिक्षम्
अग्निं मर्तस इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम्।२०।

दिनकर-अग्नि
नभ में प्रकाशित हो
व्योम धरती को तपाता
अग्नि में घृत-प्रिय अनल को
मनुज देते दिव्य आहुतियां

अग्निवासाः पृथिव्यासितज्रूस्त्विषीमन्तं
संशितं मा कृणोतु।२१।

ऐसी अग्नि से परिव्याप्त
पावक दग्ध
हे कज्जल धरा
दो मुझे आलोक
नित नूतन

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम्
भूम्यां मनुष्याऽजीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः
स नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु
जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु।२२।

भूमि, जिसमें मनुज
आहुति दान करते
देवताओं के लिए विधिवत
भूमि, जिसके दिए भोजन से
मनुज पोषित
भूमि वह दे हमें
आयुष्य की सम्पूर्णता

यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं
बिभ्रत्योषधयो यमापः
यं गंधर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा
सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन।२४।

गंध, तेरी भूमि जिसका आचमन
करते वनस्पति, जल
अप्सरा, गंधर्व
जिसको धारते हैं
करे सुरभित वह हमें भी
द्वेषरत न कहीं कोई
कभी हो हमसे.

■

(क्रमशः)

डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता

गणित एवं औद्योगिक इंजीनियरिंग में डिग्रियां. तीस वर्षों से मैनेजमेंट के प्रोफेसर. फिलहाल युनिवर्सिटी ऑफ ह्यूस्टन-डाउनटाउन में सेवारत. पचास से अधिक शोध-पत्र विश्व के नामी जर्नल्स में प्रकाशित. दो मैनेजमेंट जर्नल के मुख्य संपादक एवं कई अन्य जर्नल्स के संपादक. हिंदी पढ़ने-लिखने में रुचि. काव्य-लेखन, विशेषकर सामयिक एवं धार्मिक काव्य लेखन में.

सम्पर्क : om@ramacharit.org

प्रश्नोत्तरी

कौन बनेगा रामभक्त

१. रामजी ने कब प्रण लिया कि वे पृथ्वी से राक्षसों का नाश करेंगे?
   - अ) अयोध्या से बनवास जाते समय
   - ब) विश्वामित्र ऋषि के साथ जाते समय
   - स) ऋषियों की अस्थियों का ढेर देखकर
   - द) सीताहरण के वियोग पर

२. किसने रामजी को सुग्रीव से मित्रता करने की सलाह दी?
   - अ) हनुमान
   - ब) लक्ष्मण
   - स) सीताजी
   - द) गुरु वशिष्ठ

३. मंदोदरी के पिता कौन थे?
   - अ) रावन
   - ब) जनक
   - स) मय
   - द) अगस्त्य

४. लंका में प्रवेश करते ही अंगद ने क्या किया?
   - अ) लंकिनी से मिले
   - ब) रावन-पुत्र को मारा
   - स) विभीषण से भेंट की
   - द) सीता से भेंट की

५. लंका से लौटने पर रामजी ने किनको भरत से मिलने के लिए भेजा?
   - अ) हनुमान
   - ब) अंगद
   - स) लक्ष्मण
   - द) निषादराज

६. रामजी ने बनवास के बाद प्रथम दिन किस नदी के तट पर निवास किया?
   - अ) सरयू
   - ब) गंगा
   - स) यमुना
   - द) तमसा

७. तिरहुतराज किनका एक अन्य नाम है?
   - अ) दसरथ
   - ब) इन्द्र
   - स) रावण
   - द) जनक

८. पार्वती की माता कौन थीं?
   - अ) मैना
   - ब) अनसूया
   - स) अरुधंति
   - द) इनमें से कोई नहीं

९. रामजी का जन्म किस समय हुआ था?
   - अ) प्रातःकाल
   - ब) दोपहर
   - स) संध्या
   - द) रात्रि

१०. पंचवटी किस नदी के तट पर था?
   - अ) गंगा
   - ब) सरयू
   - स) नर्मदा
   - द) गोदावरी

इन प्रश्नों के उत्तर तुलसीकृत रामचरितमानस के आधार पर दीजिये. प्रश्नों के सही उत्तर गर्भनाल के अगले अंक में प्रकाशित होंगे. प्रश्नों के उत्तर तुरंत जानने के लिए kbr@ramacharit.org पर आग्रह किया जा सकता है.

जून २०१२ में प्रकाशित प्रश्नों के सही उत्तर : १.स, २.ब, ३.ब, ४.ब, ५.ब, ६.ब, ७.ब, ८.द, ९.ब, १०.द.

सही उत्तर भेजने वाले पहले पाँच नाम इस प्रकार हैं. १. **सरिता सिंघल**, ह्यूस्टन, यूसए, २. **राधा गुप्ता,** कनेक्टिकट, यूसए, ३. **कविता रावत**, भोपाल, ४. **शशि पाधा**, वर्जिनिया, यूसए, ५. **टी.डी. तिवारी**, ह्यूस्टन, यूएस.

गीता के ये श्लोक **प्रो. अनिल विद्यालंकार** (sandhaan@airtelmail.in) द्वारा रचित गीता-सार से लिए जा रहे हैं, जिसमें गीता के मुख्य विषयों पर कुल १५० श्लोक संगृहीत हैं.

विषय : प्रभु की भक्ति

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।

गीता १०-९

मेरे भक्त लोग मुझमें अपना चित्त और प्राण लगाकर, परस्पर एक-दूसरे को ज्ञान देते हुए और निरंतर मेरी चर्चा करते हुए सदा संतुष्ट और आनंदित रहते हैं.

अधिकतर मनुष्यों को सांसारिक पदार्थों के संग्रह में और दूसरों से मुकाबला कर आगे बढ़ने में सुख मिलता है. पर इस थोड़े से सुख के कारण उनका अधिकतर जीवन चिन्ताओं, भ्रांतियों और तनाव से भरा रहता है. दूसरी ओर कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जो अपने अस्तित्व के और ब्रह्मांड के रहस्य को जानने में अपना जीवन लगाते हैं. उन्हें शुद्ध ज्ञान की खोज में ही संतोष मिलता है. जब वे एक बार सारे अस्तित्व के स्रोत को जान लेते हैं तो उनके सभी संदेह दूर हो जाते हैं. उनका समय उस शाश्वत सत्य की चर्चा में जाता है और उनका जीवन सदा आनंद में बीतता है. अवश्य ही वे अपने इस ज्ञान का लाभ निरन्तर औरों को देते रहते हैं.

मच्चित्ताः : मुझमें चित्त को लगाए हुए, **मद्गतप्राणाः** : अपने प्राणों को भी मुझमें लगाए हुए, **परस्परं बोधयन्तः** : एक-दूसरे को ज्ञान देते हुए, **नित्यं च मां कथयन्तः** : और सदा मेरी चर्चा करते हुए, **तुष्यन्ति च** : संतुष्ट होते हैं, **रमन्ति च** : और आनंदित रहते हैं.

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

गीता ९-२२

अनन्यभाव से मेरे बारे में ही चिन्तन करते हुए जो लोग मेरी उपासना करते हैं, योग में सदा युक्त रहनेवाले उन व्यक्तियों की मैं सभी सांसारिक आवश्यकताएँ पूरी करता हूँ.

बहुत-से व्यक्ति आध्यात्मिक मार्ग पर चलने में यह सोचकर हिचकते हैं कि ऐसा करने से उनकी भौतिक आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पाएँगी. पर वास्तव में ऐसा होता नहीं है. सच्चे आध्यात्मिक जीवन का मतलब संसार को छोड़ देना नहीं है. यह सच है कि अध्यात्म की दृष्टि गहरी होने के बाद मनुष्य आवश्यकता से अधिक पैसा कमाने और भौतिक पदार्थों को जोड़ने में समय नहीं लगाएगा. पर यह तय है कि उसकी सभी भौतिक आवश्यकताएँ पूरी होती रहेंगी. परमात्मा में गहरा विश्वास रखने से ही मनुष्य में ऐसी आंतरिक शक्ति आ जाती है जिससे वह बाहरी जीवन की सभी बाधाएँ पार कर लेता है.

ये जनाः : जो लोग, **अनन्याः चिन्तयन्तः** : अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करते हुए, **माम् उपासते** : मेरी उपासना करते हैं, **नित्याभियुक्तानां** : सदा योग में युक्त, **तेषां** : उन लोगों की, **योगक्षेमं** : सांसारिक आवश्यकताएँ, **अहं वहामि** : मैं पूरी करता हूँ. (**योग** : जो नहीं है उसकी प्राप्ति और, **क्षेम** : जो है उसका रक्षण.)

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।

गीता १०-१०

योग में निरंतर युक्त और प्रीतिपूर्वक मेरी उपासना करते हुए उन व्यक्तियों को मैं बुद्धियोग का ज्ञान प्रदान करता हूँ जिससे वे मुझ तक पहुँच जाते हैं.

जन्म से ही बाहर की ओर देखने की प्रवृत्ति होने के कारण मनुष्य इन्द्रियों, मन और अहंकार के स्तर का ही जीवन जीता है. परमात्मा को जानने के लिए उसे इस स्तर से ऊपर उठकर बुद्धि के स्तर तक जाना होगा. यह तभी संभव होगा जब मनुष्य मन और अहंकार की सीमा को भली प्रकार समझ ले. बुद्धि के स्तर पर मनुष्य को चरम सत्य के रूप में परमात्मा की झलक मिलने लगती है. उसके पहले उसके मन में परमात्मा का एक अस्पष्ट बिंब होता है. जब तक उसके मन में परमात्मा का मानसिक बिंब है वह परमात्मा को नहीं जान सकता. बुद्धि के स्तर पर एक प्रकार से परमात्मा स्वयं ही मनुष्य के जीवन की बागडोर सम्हाल लेता है. यह ध्यान देने योग्य है कि गीता एक बार फिर बुद्धियोग का नाम लेकर उसका संदेश दे रही है.

सततयुक्तानां : योग में निरंतर युक्त, **प्रीतिपूर्वकं भजतां** : प्रीतिपूर्वक मेरी उपासना करते हुए, **तेषां** : उन व्यक्तियों को, मैं, **तं बुद्धियोगं ददामि** : उस बुद्धियोग का ज्ञान देता हूँ, **येन** : जिसके द्वारा, **ते माम् उपयान्ति** : वे मुझ तक पहुँच जाते हैं.

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।।

गीता १२-१३

जो किसी भी प्राणी से द्वेष किए बिना सबके प्रति मित्रता और करुणा का भाव रखता है, जो ममत्व और अभिमान से रहित है, सुख और दुःख में समान रहता है और धैर्यवान है.

इस श्लोक में और अगले कुछ श्लोकों में ऐसे व्यक्तियों का वर्णन है जो ईश्वर को प्रिय हैं या दूसरे शब्दों में जो ईश्वर के निकट हैं. परमात्मा के लिए सभी मनुष्य समान हैं, पर अध्यात्म के मार्ग पर कुछ व्यक्ति अधिक प्रगति कर चुके हैं. वे ईश्वर के निकट हैं. जो मनुष्य ईश्वर को पाना चाहता है उसके लिए आवश्यक है कि वह अन्य मनुष्यों से और संसार के अन्य सभी प्राणियों से प्यार करे. उन सभी के प्रति मित्रता और करुणा का भाव रखते हुए, बिना किसी अहंकार के, उनकी सहायता भी करे. ईश्वर को पाने के लिए सभी प्रकार के ममत्व से ऊपर उठना, सुख-दुख में समान रहना तथा धैर्यवान, क्षमाशील और दयालु होना आवश्यक है.

सर्वभूतानाम् अद्वेष्टा : सभी प्राणियों से द्वेष न करने वाला, **मैत्रः करुण एव च** : और उनके प्रति मित्रता और करुणा का भाव रखनेवाला, **निर्ममो निरहंकारः** : ममत्व और अहंकार से रहित, **समदुःखसुखः** : दुःख और सुख में समान रहनेवाला, **क्षमी** : क्षमाशील और धैर्यवान. ■

जारी...

पंचतंत्र कई दृष्टियों से संसार की सर्वाधिक लोकप्रिय कृतियों में से एक है। इसमें संकलित कहानियों का मूल उत्स लोक-जीवन है। भारतीय कृतियों में पंचतंत्र ऐसी अकेली रचना है, जिसे पूरी तरह ज्ञानकोश कहा जा सकता है। कथा प्रस्तुति की जो शैली इसमें प्रयुक्त है, उसकी एक लंबी परम्परा है। 'वेद', 'ब्राह्मण' आदि ग्रंथों में भी इस फैंटेसी का प्रयोग हुआ है।

का नहिं अबला करि सकै

किसी नगर में एक ब्राह्मण रहता था. वह अपनी पत्नी को जी जान से प्यार करता था. पर उसकी पत्नी लड़ाके स्वभाव की थी और घर के सभी लोगों से आए दिन कलह करती रहती थी. ब्राह्मण अपनी स्त्री पर इस तरह लट्टू था कि उसने उसके लिए अपने परिवार को छोड़ दिया और उसे लेकर किसी दूसरे देश को चल पड़ा.

रास्ते में एक जंगल पड़ा. ब्राह्मणी ने कहा, 'सुनते हो जी, मुझे बहुत जोर की प्यास लगी है. कहीं से ढूंढ़कर पानी तो ले आओ. वह पानी लेने चला गया, पर पानी लाने में कुछ देर हो गई. लौटकर आया तो देखा ब्राह्मणी मरी पड़ी है. ब्राह्मण जार-बेजार रोने लगा. इसी समय आकाशवाणी हुई कि है ब्राह्मण यदि तू अपनी आधी आयु अपनी घरवाली को दे दे तो यह दुबारा जीवित हो जाएगी.'

आकाशवाणी सुनकर ब्राह्मण ने आचमन आदि करके अपने को शुद्ध किया और तीन बार संकल्प करके अपनी आयु का आधा भाग ब्राह्मणी को दान कर दिया. ब्राह्मण के जीवनदान से ब्राह्मणी उठ बैठी.

अब दोनों ने पानी पिया और कुछ जंगली फल खाकर अपनी राह हो लिए. कुछ दूर आगे जाने पर उन्हें एक नगर के किनारे बनी हुई एक सुंदर वाटिका मिली. ब्राह्मण ने अपनी स्त्री से कहा, 'तुम यहीं बैठ जाओ. मैं तब तक नगर में जाकर खाने की कोई चीज ले आता हूं.'

ब्राह्मण उसे वाटिका में बैठाकर भोजन का डौल बैठाने के लिए नगर में चला गया. उस वाटिका में एक पंगु आदमी रहट चला रहा था. रहट चलाते समय वह बड़े मीठे सुर में कुछ गा भी रहा था. उसका सुर इतना मीठा था कि ब्राह्मणी उस पर मोहित हो गई. वह उसके पास जाकर बोली, 'तुम मेरे साथ संभोग करो नहीं तो मैं अपनी जान दे दूंगी और तुम्हें एक स्त्री की हत्या का पाप लगेगा.'

वह पंगु बोला, 'तुम मेरी हालत तो देखो. मुझ पंगु आदमी से तुम्हें क्या मिलेगा.'

ब्राह्मणी बोली, 'तुम बहाने तो बनाओ मत. तुम जैसे हो वैसे हो, मैं जो चाहती हूं वह तो तुम्हें करना ही होगा.'

उस बेचारे के पास कोई चारा तो था नहीं. वह ब्राह्मणी के साथ जुट गया. जब सब कुछ निबट गया तो ब्राह्मणी ने उस पंगु से कहा, 'आज से जीवन भर के लिए मैंने तुम्हें अपना बना लिया. अब तुम भी हमारे साथ ही चलो.'

पंगु ने भी ब्राह्मणी की बात पर हामी भर ली.

उधर जब ब्राह्मण भोजन लेकर आया और अपनी स्त्री के साथ खाने को बैठा तो उसने कहा, 'उस बेचारे पंगु आदमी को तो देखो. वह बहुत भूखा दिखाई दे रहा है. दो चार निवाले उसे भी दे दो.'

ब्राह्मण ने उस पंगु को भी कुछ खाना दे दिया.

जह वह खाने लगा तो ब्राह्मणी ने ब्राह्मण से कहा, 'तुम्हारे साथ हारी बीमारी में कोई मदद करने वाला तो है नहीं. जब तुम मुझे छोड़कर रोटी पानी का जुगाड़ करने चले जाते हो तो मैं अकेली रह जाती हूं और सूनापन मुझे काटने को दौड़ता है. इस पंगु आदमी को भी साथ ले लो तो कितना अच्छा रहे.'

ब्राह्मण ने कहा, 'मेरे लिए तो अपना ही शरीर भार बना हुआ है. चलते-चलते थक जाता हूं. इस पंगु को कौन ढोता फिरेगा.'

ब्राह्मणी बोली, 'ऐसी बात है तो मैं इसे पेटी में रखकर खुद अपने सिर पर ढोती ले चलूंगी.'

ब्राह्मण को कुछ पता तो था नहीं. उसने उसका यह सुझाव मान लिया. ब्राह्मणी उस पंगु को पेटी में रखकर साथ ले चली. दूसरे दिन राह का थका-मांदा ब्राह्मण एक कुएं की जगत पर आराम करने को बैठा. कुछ हो देर में उसकी आंख लग गई. पति को सोया हुआ देखकर ब्राह्मणी ने उसे धक्का देकर कुएं में गिरा दिया और उस पंगु को लेकर नगर में पहुंच गई.

नगर की सीमा पर चुंगी के सिपाहियों ने देखा कि एक स्त्री अपने सिर पर पेटी में कुछ लिए जा रही है. उन्होंने पेटी उससे छीन ली और उसे ले जाकर राजा के सामने पेश किया.

> आकाशवाणी सुनकर ब्राह्मण ने आचमन आदि करके अपने को शुद्ध किया और तीन बार संकल्प करके अपनी आयु का आधा भाग ब्राह्मणी को दान कर दिया. ब्राह्मण के जीवनदान से ब्राह्मणी उठ बैठी.

जब यह देखने के लिए पेटी खोली गई कि इसमें क्या रखा है तो उसमें दुबका हुआ पंगु मिला. कुछ ही देर में रोती-कलपती हुई वह ब्राह्मणी भी आ पहुंची.

राजा ने ब्राह्मणी से पूछा, 'तुमने इसे पेटी में क्यों भर लिया है?"

ब्राह्मणी बोली, 'महाराज, यह मेरे पतिदेव है. पंगु होने के कारण पट्टीदारों ने उन्हें सताना शुरू कर दिया था. मैं इनसे बहुत प्रेम करती हूं इसीलिए और कोई उपाय न देख कर इन्हें इस पिटारी में रखकर आप के नगर चली आई.'

राजा ब्राह्मणी की बातों में आ गया. उसने कहा, 'ब्राह्मणी तुम मेरी बहन जैसी हो. मैं दो गांव तुम्हें दान में देता हूं. तुम वहीं अपने पति के साथ रहकर सुख से अपना जीवन बिताओ.'

ब्राह्मण भी किसी राह चलते की सहायता से कुएं से निकलकर जैसे-तैसे नगर में आ पहुंचा. उसे ब्राह्मणी ने देख लिया. वह फिर राजा के पास पहुंची और बोली, 'महाराज, मेरे पति का दुश्मन उनका पीछा करता हुआ यहां भी आ पहुंचा है.'

ब्राह्मणी की बात सुनकर राजा ने उस ब्राह्मण को मार डालने का हुक्म दे दिया.

राजा का हुक्म सुनकर ब्राह्मण ने कहा 'महाराज, इसने मेरी एक चीज ले ली है. यदि आप न्यायी हैं तो कृपा करके मेरी वह चीज मुझे दिलवा दें.'

राजा ने कहा, 'देवी, यदि तुमने इसकी कोई चीज ली हो तो उसे लौटा दो.'

ब्राह्मण ने कहा, 'मैंने तुम्हें अपनी आयु का जो आधा भाग दिया था, सिर्फ उसे तुम वापस कर दो.'

ब्राह्मणी को तुरत कुछ सूझा नहीं. राजा के डर से उसने कह दिया, 'मैंने तुम्हारी आयु का जो आधा भाग लिया था, उसे तुम्हें वापस करती हूं.'

राजा की हैरानी का कोई ठिकाना नहीं. उसने पूछा, 'माजरा क्या है?'

ब्राह्मण ने पूरी बात राजा को सुना दी.

यह कहानी सुनाने के बाद बंदर बोला, 'मैं उसी ब्राह्मण की कहीं बात ठुकरा रहा था जिसके लिए मैंने अपने परिवार को छोड़ा, अपनी आयु का आधा भाग भी दे दिया, वहीं आज मुझे छोड़कर चल दी तो फिर कौन मूर्ख होगा जो किसी औरत के कहने में आए.'

अरे भाई, औरतों के कहने में आकर आदमी क्या कुछ नहीं कर बैठता, उनकी बात में आकर उन्हें क्या कुछ नहीं दे डालता. मैंने अपना मुंडन उसी पर्व में कराया है जिस पर्व में आदमी भी घोड़ों की तरह हिनहिनाता है.'

घड़ियाल ने यह कहानी भी नहीं सुनी थी. बानर को यह कहानी भी सुनानी पड़ी.■

प्राण शर्मा

१३ जून, १९३७ को वजीराबाद (अब पाकिस्तान) में जन्म. पंजाब विश्वविद्यालय से एम.ए., बीएड. १९६५ से यू.के. में निवास और वहाँ के लोकप्रिय शायर और लेखक हैं. यू.के. से निकलने वाली हिन्दी की एकमात्र पत्रिका 'पुरवाई' में ग़ज़ल के विषय में महत्वपूर्ण लेख लिखे हैं और यू.के. में पनपे नए शायरों को कलम माजने की कला सिखाई है. आपकी रचनाएँ पंजाब के दैनिक पत्र, 'वीर अर्जुन', नयाज़ानोदय, भाषा एवं 'हिन्दी मिलाप' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं. देश-विदेश के कवि सम्मेलनों, मुशायरों तथा आकाशवाणी कार्यक्रमों में हिस्सेदारी की है तथा अनेकों पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं. प्रकाशित रचनाएँ : 'ग़ज़ल कहता हूं' (ग़ज़ल संग्रह), 'सुराही' (कविता संग्रह).

संपर्क : 3, Crackston Close, Coventry, CV2 5EB, U.K.

Email : sharmapran4@gmail.com

लघु कथा

चोर, डाकू और साधु

मेरे दो मित्र हैं, एक मैनचेस्टर में रहता है और दूसरा लिवरपूल में.

वे एक-दूसरे को नहीं जानते हैं. मुद्दत हो गयी थी उनसे मिले हुए. कभी चिट्ठी नहीं और न ही कभी टेलीफोन.

संयोग से एक दिन वे दोनों मित्र मुझसे मिलने के लिए आ गये. उन्हें देख कर मेरा मन खिल उठा. थोड़ा जलपान और हँसी-मज़ाक की बातें करने के बाद उन्होंने अपनी-अपनी रामकहानी सुनानी शुरू कर दी.

एक बोला - 'भईया, क्या बताऊँ मैं अपने उस दोस्त के बारे में? वो दोस्त नहीं था, चोर था चोर. मेरा दिमाग फिर गया था जो मैं उसे अपना सच्चा दोस्त समझ बैठा था. विनाश काले विपरीत बुद्धि. एक दिन मैंने उसको अपने घर बुला लिया था, खिलाने-पिलाने के लिए. उसको तो पिलायी ही लेकिन मैं उसके आने की खुशी में शराब कुछ ज़्यादा ही पी गया. नशा मुझ पर कुछ ऐसा तारी हुआ कि मुझे अपनी खबर नहीं रही. सुबह उठा तो देखा मेरी कलाई से सोने की मँहगी घड़ी गायब थी. मैं सर पीट कर रह गया. दोस्त भी चोर हो सकता है, मैंने कभी सोचा नहीं था.'

दूसरा दोस्त रुआँसा होकर बोला - 'मेरा वो दोस्त तो डाकू निकला, डाकू. बड़ा अपनापन दिखाता था. हमेशा मुझसे कहा करता था कि तुमको मेरा जैसा दोस्त नहीं मिलेगा. दोस्तो, घनिष्ठता बढ़ते ही उसने रोज़ ही मेरे घर आना शुरू कर दिया. मेरी गैरहाजिरी में भी वो आ जाता था. एक दिन काम से लौटा तो मैंने देखा कि पत्नी गायब थी. हैरान-परेशान हुआ. मेज़ पर उसका पत्र पड़ा हुआ मिला. लिखा था - 'मैं तुम्हारे रोज़-रोज़ के अत्याचारों से तंग थी इसलिए तुम्हें छोड़ कर जा रही हूँ, सदा-सदा के लिए. मुझे ढूँढने की कोशिश नहीं करना.' दोस्तो, मेरे पांवों के नीचे से ज़मीन खिसक गयी जब मुझे पता चला कि वो डकैती मेरे उस दोस्त ने की थी.'

'दोस्तो, मेरा अनुभव कुछ और ही है दोस्त के बारे में.' दोनों का दुखड़ा सुन कर मैं भी बोल पड़ा - 'मुझे नेक से नेक दोस्त मिला है. आप हैं और भी कई हैं. एक दोस्त तो मेरे मन में बसा रहेगा, सदा-सदा के लिए. उसकी याद कभी धूमिल नहीं होगी. अब वो जीवित नहीं है. मेरे लिए उसने मौत को अपने गले से लगा लिया. हुआ यूँ कि हम दोनों स्कोटलैंड की गहरी और सबसे बड़ी झील 'लोमोंड' में तैरने के लिए कूद गये. एक मगरमच्छ की लपेट में मैं आ गया. मेरा दोस्त मेरे बचाव के लिए आगे बढ़ा. मुझे तो बचा लिया उसने लेकिन वो खुद उसकी लपेट में आ गया.'■

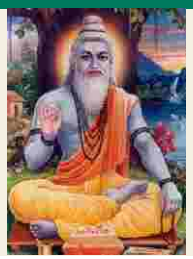

महर्षि वेद व्यास

वैदिककालीन ऋषि वेद व्यास की रचना महाभारत की गणना भारतीय साहित्य-भंडार के सर्वश्रेष्ठ महाग्रंथों में की जाती है। इसमें पांडवों की कथा के साथ अनेक सुन्दर उपकथाएँ हैं तथा बीच-बीच में सूक्तियाँ एवं उपदेशों के उज्जवल रत्न भी जुड़े हुए हैं। महाभारत एक विशाल महासागर है जिसमें अनमोल मोती और रत्न भरे पड़े हैं। रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति और धार्मिक विचार के मूल स्रोत माने जा सकते हैं।

छठा दिन

प्रातःकाल से ही युधिष्ठिर की आज्ञा के अनुसार सेनापति धृष्टद्युम्न ने पांडव-सेना की मकर-व्यूह में रचना कर दी. उधर क्रौंच-व्यूह में रची हुई कौरव-सेना सामने तैयार खड़ी थी.

उन दिनों सैन्य-व्यूहों के नाम किसी पशु या पक्ष के-से होते थे. यह तो सब जानते हैं कि व्यायाम के जो आसन प्रचलित हैं, उनके भी नाम पशु-पक्षियों के नाम पर होते हैं- जैसे मत्स्यासन, गरुड़ासन इत्यादि. यह भी उसी समय से प्रचलित हुआ है, ऐसा मालूम होता है. सेना व्यूहों के नाम इसी भांति रखे जाते थे.

किसी व्यूह-विशेष की रचना करते समय इन बातों का ध्यान रखना पड़ता था कि सेना का फैलाव कैसा हो? विभिन्न सेना-विभागों का बंटवारा कैसा हो? अर्थात् प्रत्येक स्थान पर कौन-सा विभाग किस संख्या में स्थित हो, कौन-कौन से सेनानायक किन-किन मुख्य स्थानों पर खड़े रहकर सैन्य-संचालन करें, आदि इन सब बातों को खूब सोच-विचारकर आक्रमण एवं बचाव दोनों प्रकार की कार्रवाइयों की कुशल व्यवस्था रखना ही व्यूह रचना का उद्देश्य होता था. जिस व्यूह का आकार मगरमच्छ का-सा होता उसका नाम-मगर व्यूह रक्खा जाता था. क्रौंच, गरुड़ आदि व्यूहों के भी नाम इसी तरह पड़े. उन दिनों के समर-शास्त्र में कई प्रकार के व्यूहों का वर्णन पाया जाता है.

> *भीमसेन शत्रु-सैन्य में अकेले घुस गया और दुर्योधन के भाइयों का वध करने की इच्छा से उन्हें खोजने लगा. शीघ्र ही दुर्योधन के भाइयों ने भीम को आ घेरा. दुःशासन, दुर्विषह आदि ने एक साथ भीमसेन पर चारों ओर से बाणों का वार कर दिया.*

महाभारत-युद्ध के संचालन योद्धा-गण, जिस दिन जो उद्देश्य साधना हो, उसके अनुसार घटनाओं के रुख पर पहले ही सोच-विचार कर लेते थे और तदनुरूप व्यूह-रचना का निश्चय करते थे.

छठे दिन सवेरे युद्ध छिड़ते ही दोनों तरफ की जन-हानि बड़ी तादाद में होने लगी.

आचार्य द्रोण का सारथी मारा गया इस पर द्रोण ने स्वयं रास पकड़कर रथ चला लिया और पांडव सेना में घुसकर ऐसा प्रलय मचाया मानो आग का अंगारा रुई के ढेर में घुस पड़ा हो.

शीघ्र ही दोनों सेनाओं के व्यूह टूट-फूट गये. इस पर दोनों पक्ष के सेना-समूह बांध तोड़कर निकल पड़े और एक-दूसरे से भिड़ गये. ऐसी मार-काट मची कि रक्त की नदी सी बह निकली. सारे युद्ध क्षेत्र में मरे हुए हाथी घोड़े और मृत सैनिकों की लाशों तथा टूटे रथों के बड़े-बड़े ढेर लग गये.

इतने में भीमसेन शत्रु-सैन्य में अकेले घुस गया और दुर्योधन के भाइयों का वध करने की इच्छा से उन्हें खोजने लगा. शीघ्र ही दुर्योधन के भाइयों ने भीम को आ घेरा. दुःशासन, दुर्विषह आदि ने एक साथ भीमसेन पर चारों ओर से बाणों का वार कर दिया. वायुपुत्र भीम, जिसे भय छू तक न गया था, ऐसे आक्रमण से भला कब विचलित होने वाला था! वह अकेले ही उन सभी के मुकाबले में डटा रहा. दुर्योधन के भाइयों की इच्छा तो भीमसेन को कैद कर लेने की थी, किंतु भीमसेन की इच्छा उन सबका काम ही तमाम कर डालने की थी.

लड़ाई की भयानकता का क्या कहें. ऐसा भयानक संग्राम हुआ कि जैसे देवताओं तथा असुरों के बीच हुआ बतलाते हैं. इतने में अचानक भीमसेन को न जाने क्या सूझा. वह उठ खड़ा हुआ और अपने सारथी विशोक से बोला- 'विशोक! तुम यहीं पर ठहरे रहो, मैं जरा आगे चलता हूं और धृतराष्ट्र के इन दुष्ट लड़कों का काम तमाम करके लौटता हूं. मेरे लौटने तक तुम यहीं पर खड़े रहना.' यह कहकर भीमसेन हाथ में गदा लेकर रथ पर से कूद पड़ा और शत्रुदल के बीच में जा घुसा. घोड़ों, सवारों एवं रंथों को चकनाचूर करता हुआ वायुपुत्र भीमसेन दुर्योधन के भाइयों की ओर इस प्रकार बढ़ चला, मानो कराल काल हाथ में दण्ड लिये घूम रहा हो.

धृष्टद्युम्न ने जब भीमसेन को रथ पर चढ़कर शत्रु-सेना में घूमते देखा था तभी वेग से उसका पीछा किया. पर भीमसेन के रथ को एक जगह खाली खड़ा देखा. वहां रथ पर अकेला सारथी ही था, भीमसेन न था.

'विशोक! भीमसेन कहां गये?'

सारथी विशोक ने द्रुपद-राजकुमार को नमस्कार करके निवेदन किया- 'सेनापति! पाण्डु-पुत्र मुझे यहीं ठहरने की आज्ञा देकर अपने हाथ में गदा लेकर अकेले इसी सेना-समुद्र में कूद पड़े हैं और धृतराष्ट्र के लड़कों की खोज में हैं. आगे का हाल तो मुझे मालूम नहीं.'

यह सुनकर धृष्टद्युम्न शंकित हो उठा. उसे भय हुआ कि कहीं सारे कौरव-पुत्र एक साथ मिलकर भीमसेन पर हमला न कर दें. यह सोच पांडव-सेनापति भी स्वयं सेना में घुस पड़ा. भीमसेन की गदा की मार से जो हाथी-घोड़े मरे पड़े थे, उन्हीं के द्वारा भीम का पता लगाता हुआ धृष्टद्युम्न आगे बढ़ा.

दूर शत्रुओं के समूह में भीमसेन दिखाई दिया. धृष्टद्युम्न ने देखा कि भीमसेन हाथ में गदा लिये भूमि पर खड़ा है. उसकी लाल-लाल आंखों से मानो चिंगारियां निकल रही हैं, सारा शरीर घावों से भरा है. शत्रु-दल के रथारुढ़ वीर, भीमसेन को चारों तरफ से घेरे हुए बाणों की बौछार कर रहे हैं. यह देखकर धृष्टद्युम्न का हृदय अभिमान एवं श्रद्धा से भर आया. वह रथ से कूद पड़ा और दौड़कर भीम को छाती से लगा लिया और खींचकर अपने रथ पर बिठा लिया. फिर उसके शरीर पर लगे बाणों को एक-एक करके निकालने लगा.

यह देख दुर्योधन ने अपने सैनिकों से कहा- 'देखते क्या हो द्रुपदकुमार! भीमसेन पर हमला बोल दो. भले ही वे चुनौती स्वीकार करें या न करें. दोनों में से कोई बचने न पावे.' यह सुनते ही कितने ही कौरव-वीर एक साथ उन दोनों पर टूट पड़े. भीम और धृष्टद्युम्न ने न तो चुनौती दी, न स्वीकार ही की. वे युद्ध करने को प्रस्तुत न हुए. फिर भी कौरव-वीर उन पर बाणों बरसाते रहे.

यह देख धृष्टद्युम्न से न रहा गया. उसने कौरवों पर मोहनास्त्र का प्रयोग किया जिससे वे सब अचेत हो गये. (धृष्टद्युम्न ने मोहनास्त्र का प्रयोग द्रोणाचार्य से सीखा था.) इतने में दुर्योधन वहां आ पहुंचा. उसने मोहनास्त्र के प्रभाव को दूर करने वाला अस्त्र चलाया. उसके प्रयोग से सारे कौरव-वीर फिर जाग्रत हो उठे और दुर्योधन ने सबको उत्साहित करके धृष्टद्युम्न पर जोरों से आक्रमण करने की आज्ञा दी.

उधर युधिष्ठिर ने वीर अभिमन्यु के सेनापतित्व में भीमसेन और धृष्टद्युम्न की सहायता के लिये सेना भेज दी थी.

दोनों वीर रथों पर आरुढ़ होकर एक-दूसरे पर भीषण शस्त्र-प्रहार करने लगे. अंत में दुर्योधन बुरी तरह घायल हुआ और बेहोश होकर रथ पर गिर पड़ा. तब कृपाचार्य ने बड़ी चतुराई से उसे रथ पर ले लिया जिससे दुर्योधन की जान बच गई.

अभिमन्यु ठीक समय पर अपनी सेना के साथ धृष्टद्युम्न की मदद पर जा पहुंचा. इस मदद के पहुंच जाने से धृष्टद्युम्न और उत्साह के साथ लड़ने लगा. इधर भीमसेन भी जरा विश्राम करके केकेय-राज के रथ पर आरुढ़ होकर कौरवों पर भीषण प्रहार करने लगा. इतना सब होने पर भी द्रोण के पराक्रम एवं उग्रता के आगे भीमसेन आदि की वीरती फीकी-सी जान पड़ती थी. आचार्य द्रोण ने द्रुपद-कुमार के सारथी और घोड़ों को मार डाला और उसके रथ को चकनाचूर कर दिया. इस पर धृष्टद्युम्न अभिमन्यु के रथ पर जा चढ़ा और अविचलित भाव से अपना युद्ध जारी रखा. पर अंत में द्रोण ने वह तबाही मचाई कि पांडव-सेा के पांव उखड़ गये. पांडव-सैनिकों के हृदय कांप उठे.

इसके बाद तो अंधाधुंध संकुल-युद्ध होने लगा. असंख्य वीर सैनिक मारे गये. दुर्योधन और भीमसेन के भी दो-दो हाथ हुए. दोनों ने पहले तो वाक्-बाणों का एक-दूसरे पर प्रहार किया फिर हथियारों की लड़ाई हुई. दोनों वीर रथों पर आरुढ़ होकर एक-दूसरे पर भीषण शस्त्र-प्रहार करने लगे. अंत में दुर्योधन बुरी तरह घायल हुआ और बेहोश होकर रथ पर गिर पड़ा. तब कृपाचार्य ने बड़ी चतुराई से उसे रथ पर ले लिया जिससे दुर्योधन की जान बच गई. उसी समय भीष्म उधर आ पहुंचे और कौरव सेना का संचालन करने लगे. उन्होंने पांडव सेना को तितर-बितर कर दिया. बड़ी देर तक इसी प्रकार तुमुल युद्ध होता रहा, यहां तक कि पश्चिमी आकाश लाल हो चला. सूरज डूबना ही चाहता था. फिर भी कुछ मुहूर्त तक युद्ध जारी रहा.

सूर्यास्त के बाद युद्ध समाप्त हुआ. आज का युद्ध इतना भयंकर था कि धृष्टद्युम्न और भीमसेन के सकुशल शिविर में लौट आने पर युधिष्ठिर ने बड़ा आनंद मनाया. उनकी खुशी की सीमा न थी.■

जीवनानन्द दास

(१७ फरवरी, १८९९/२२ अक्तुबर १९५४)

कदाचित् बांग्ला साहित्य के सबसे अधिक लोकप्रिय कवि हैं. उन्हें आधुनिक बांग्ला कविता का अगुवा समझा जाता है. रवीन्द्रनाथ ठाकुर के तेज के सामने विशिष्ट धारा और शैली के साथ अपने को प्रकाशित करने वाले तीन नाम उल्लिखित होते हैं- नजरूल इस्लाम, सुकान्त भट्टाचार्य एवम् जीवनानन्द दास. बनलता सेन उनकी प्रसिद्ध रचना है. लियोनार्डो डी विंसी की पेंटिंग की मोना लिसा की तरह जीवनानन्द दास की बनलता सेन एक जीवन्त मिथक है.

मूल बांग्ला से हिन्दी में अनुवाद गंगानन्द झा

बनलता सेन

हजार सालों से चलता रहा हूँ
पृथ्वी की राहों पर
सिंहल समुद्र से निशीथ के अन्धकार में
मलय सागर में
बहुत भटका हूँ मैं
बिम्बिसार अशोक के धूसर संसार में
वहाँ था मैं
और भी दूर अन्धकार में विदर्भ नगर में
मैं एक क्लान्त प्राण
चारों ओर जीवन का समुद्र फेनिल
मुझे दो पलों की शान्ति दी थी
बनलता सेन ने

उसके बाद कब की विदिशा की अँधेरी रात
उसका चेहरा श्रावस्ती का शिल्प
बहुत दूर समुद्र पर
पतवार तोड़कर
जो नाविक भटक गया है
हरी घास का देश जब वह
दारूचीनी के द्वीप के भीतर देखता है
उसी तरह देखा है उसे अन्धकार में
उसने कहा
अब तक कहाँ थे आप?
चिड़िया के नीड़ की तरह की आँखें खोलकर
—नाटोर की बनलता सेन

सारे दिन के खत्म होने पर
ओस की आवाज की तरह
सन्ध्या आती है
डैनों पर पड़ी धूप की गंध पोंछ डालती है
धरती पर के सारे रंगों के फीके पड़ जाने पर
पाण्डुलिपि आयोजन करती है
जूगनुओं के रंग-बिरंग झिलमिल
बातचीत के बीच
सभी पक्षी घर आते हैं
सारी नदियाँ—
चुक जाता है जीवन का सारा
देना पावना
रह जाता है केवल अन्धकार
आमने-सामने बैठने को बनलता सेन.

■

प्रीतिसेन गुप्ता

भारत के प्रथम चार्टेड अकाउन्टेंट की पुत्री. अहमदाबाद से अँग्रेजी में एम.ए. किया और यहीं व्याख्याता हो गईं, फिर अमेरिका जा बसीं. वहां घर की याद से निजात पाने के लिए शुरू हुआ अलग-अलग देशों की यात्रा करने का जुनून. अब तक ये अकेले सातों महाद्वीपों की यात्रा कर चुकी हैं. विश्व की तृतीय महिला यात्री हैं जिन्होंने अकेले यात्राएं की हैं. कविता संग्रह सहित २६ छब्बीस किताबें प्रकशित. ७ गुजराती साहित्य अकादमी के पुरस्कार मिले. विश्व की किसी भी स्त्री ने इतने यात्रा संस्मरण नहीं लिखे.

सम्प्रति - न्युयॉर्क में रहते हुए घूमने के जुनून को पूरा कर रहीं हैं.

अनुवाद

मूल गुजराती से हिन्दी अनुवाद नीलम कुलश्रेष्ठ

घर से दूर

हिंद महासागर
शुरू होता है
और समाप्त होता है जहाँ
वहां मेरा घर है,
जिसे मैं घर गिनती हूँ वह है
क्या मेरे लिए
बनाया घर है वह?

जिस-जिस की गिनती
घर का नाम
लेते ही कर सकती हूँ
उनकी हूँकती स्मृतियाँ ही
मेरी साँसों की आजीविका
मेरे प्राणों को सींचती
मेरे प्राणों पर
आशीषों की बौछार करती

और इसलिए तो जपती हूँ
घर के कोने-कोने के
नाम की माला

दूर से आती
खारी हवा के कनों में
इसकी चरण रज छूती हूँ
मोम्बासा के तट खड़ी-खड़ी.
■

गृह प्रवेश

स्मृति की चिंगारी
हृदय में धधकता स्नेह
बसंती पवन
आकाश गंगा अधीर

देवदूत गान कर रहे हैं
किन्नर दुंदभी बजा रहे हैं
स्वर्ग में फूलों जैसा
खिल उठा मन

रोम रोम में
पक्षियों की उड़ान
चारों तरफ
उन्मत हर्षातुरनाद
मेरा बस
स्वदेश में प्रवेश करना.
■

अजय भट्ट

६ मार्च, १९६३ को लखनऊ में जन्म. एमएसीटी भोपाल से बी.ई. मैकेनिकल एवं भारतीय विदेश व्यापार संस्थान, नई दिल्ली से एमबीए. १९९० से बैंकॉक में कार्यरत. वर्तमान में हेड ऑफ़ मार्केटिंग (एशिया). पहली कविता १९८४ में लिखी. हास्य कविताओं के अलावा कहानी भी लिखते हैं. बैंकॉक में आयोजित कवि सम्मलेनों में कविता पाठ.

संपर्क : 6A (168/43), Prestige Tower 'B', Sukhumvit Soi 23, Bangkok, Thailand ईमेल- bhatt@hotmail.com

समय - तू काश ठहर जाता!

अभी खोली थीं आँखे उसने
होठों पर वो पहली मुस्कराहट
नव निर्मित कपोल की भांति
आयी वो जिंदगी में बिना आहट
कल ही तो सीखा उसने
हँसना, रोना, चलना
'बापू, मैं तुम्हारी बेटी हूँ तेरी छाया में है मुझे पलना'
अतीत के पन्नों में कहीं खो गया है बचपन उसका
एक टीस सी उठती है यादों की लहर जब दे झोंका
उन कोमल नन्ही उँगलियों को फिर से पकड़ पाता
समय - तू काश ठहर जाता!

दूर खड़ी वो पुकारती - 'बापू ले मुझे गोदी में'
तेरी ही तो परछाई हूँ,
क्या पकड़ सकता है मुझे इस लम्हे?'

जानते हुए मरीचिका है वो मैं अपने हाथ बढ़ाता
पर हवा के झोंके को मुट्ठी में कैसे पकड़ पाता?
उसकी आँखे मुझसे हजारों सवाल करतीं
'बापू, तेरी ये नन्ही बेटी
क्या तुझ पर बोझ थी?
इन आंसुओं के सैलाब को उसको समझा पाता
समय - तू काश ठहर जाता!

जिंदगी की कशमकश में वक्त कैसे उड़ गया
सालों का समय चंद लम्हों में सिकुड़ गया
कल ही तो कहती थी वो -
'बापू, चलो गुड़िया खेलें,
तेरे कन्धों पर बैठकर
देखूंगी मैं दुनिया के मेले'
उसके साथ रेत में घरोंदे बनाना बाकी था
चंद पल ही तो दे पाया उसे
जो बिलकुल नाकाफी था
उसके बचपन को यादों में क़ैद कर पाता
समय - तू काश ठहर जाता!

आ पहुंची है बेला आज बिदाई की
वो जा रही है दूर
देकर पीड़ा इस जुदाई की
कहना चाहता हूँ बहुत कुछ
पर वक्त बहुत कम है
परछाई बिछुड़ रही शरीर से
इसका ही तो बस गम है
पर शायद कालचक्र का दस्तूर जारी है
उसके सपने हमारे आंसुओं से भारी हैं
बिटिया, काश मैं कुछ लम्हे और मांग पाता
समय - तू काश ठहर जाता!
■

स्नेह ठाकुर

१५ जुलाई को चित्रकूट में जन्म. शिक्षण : भारत, इंग्लैंड और कैनेडा. लेखन, पठन, नाट्य-मंचन, चित्रपट, चित्रकला एवं भ्रमण. नाट्य लेखन-मंचन, चलचित्र अभिनय से जुड़ाव. प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ : काव्य संग्रह - जीवन के रंग, जीवन निधि, अनुभूतियाँ, काव्याञ्जलि, जज़्बातों का सिलसिला, दर्दे-जुबाँ (उर्दू कविताओं का संग्रह). कहानी संग्रह - अनोखा साथी, आज का पुरुष. उपन्यास - कैकेयी : चेतना-शिखा. मान्यता प्राप्त दुभाषिया, अधिकृत अनुवादक और भाषांतरकार. 'एडिटर्स च्वाइस एवार्ड' से 'दि नेशनल लाइब्रेरी ऑफ़ पोएट्री' द्वारा चार बार सम्मानित. 'साहित्य भारती सम्मान', दिल्ली से सम्मानित. सम्प्रति - संपादक-प्रकाशक वसुधा. वेबसाइट - http://www.Vasudha1.webs.com

सम्पर्क : 16 Revlis Crescent Toronto, Ontario M1V-1E9 Canada E-mail: sneh.thakore@rogers.com

कविता

विवेकानन्द जी की मान्यता

घिरे रहेंगे जब तलक
अज्ञानता के अँधेरों से
जलते रहेंगे जब तलक
पेट की आग में भूख से
उन सहस्त्रों-लाखों के प्रति
मानूँगा मैं गद्दार उन्हें
पहुँच कर जिन्होंने
शिक्षा की बुलंदियों पे
फेर ली हैं नज़रें
उन्हीं से जिनके बूते पे
पहुँचे हैं
इस मुक़ाम पे आज ये.

जाओगे कहाँ तुम
भगवान को ढूँढने?
क्या सब दीन-दुखियारे
भगवान नहीं?
करो पूजा उनकी
सबसे पहले
क्यों खोदते हो कुआँ
गंगा किनारे!
देखता है
भगवान जो शक्तिहीन गरीबों में
करता है
वास्तव में ईश्वर-दर्शन वही.
■

खंडन

मानव के आरोप पर
कि ईश्वर तो हमसे
बोलता नहीं
ईश्वर ने कहा -
आरोप न्यायोचित नहीं
मैं तो हर समय
हर किसी से
बात करता हूं
प्रश्न यह नहीं
कि मैं किससे
और कब
बात करता हूं
वरन्
कौन मुझे
सुनता है.
■

प्रवीण पंडित
१० सितंबर को पश्चिमी उत्तर प्रदेश के हापुड़ नगर में जन्म. गीत, कविता, निबंध एवं कहानियाँ लिखते हैं. छोटे-छोटे नाटक लिखे और मंचित किए. अनेक पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित. सम्प्रति - दिल्ली मेट्रो में डी.जी.एम. (सिग्नल एवं टेलीकॉम) के पद पर कार्यरत.
सम्पर्क : praveen_peek@yahoo.com

चलूँ कुछ रोशनी

चलूँ कुछ रोशनी बुनकर, नई राहें बिछा लूँ तो
बहुत मायूस लब हैं, गीत वोही, गुनगुनालूँ तो.

मेरे कुछ ख़्वाब शायद मोड़ तक पहुँचे नहीं होंगे
उस रूठे यार को आवाज़ दे, फिर से बुला लूँ तो.

न जाने बात निकली, लोग क्या मानी लगा लेंगे
उसका नाम फिर ओठों पे आने से दबा लूँ तो

कहीं पर धूप, बारिश या कभी तूफान भी आए
अपना हौसला, एक बार फिर से आज़मा लूँ तो

सुनहरे कुछ सवेरे, साँझ गंदुम, स्याह सी रातें
सभी ये रंग दिल के केनवस पर ही लगा लूँ तो

बहुत अरसा हुआ खामोशियों में तैरते, घिरते
बुरा गर न लगे तो, आज फिर से मुस्करा लूँ तो.

■

बहकी भटकती छाँव

हो गए संबंध अनबोले
वहीं पीछे कहीं पर
रह गया वो
माँ का जाया गाँव

शून्य संवेदन
लिए है मौन उद्‌बोधन
चला ढोता निपट काया
न कोई रंग-संयोजन

न कोई खिड़कियां खोलें
हुए मन के झरोखे बंद
सहला कर फफोलों को
चला फिर राह भूला पाँव

खोजती अलकें
थकी सी अधमुंदी पलकें
मिले बिन द्वार से आना
विदाई राग सा छलके

न शाखें, पत्तियां डोलें
अमराई खड़ी सहमी
न घूँघट गंध ने खोला
रही बहकी भटकती छांव.

■

स्वाति मेलकानी

२९ अप्रैल १९८४ को नैनीताल में जन्म. भौतिक विज्ञान व शिक्षाशास्त्र में स्नातकोत्तर. कविता एवं कहानियां विभिन्न राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित. सम्प्रति - राजकीय बालिका इन्टर कॉलेज बेतालघाट, नैनीताल में अध्यापन.

सम्पर्क : swati.melkani@gmail.com

कविता

अम्मा को देखकर

अम्मा तुम बीड़ी पीती हो
और तुम्हारी आजादी का
एक धुँआ सा फैल रहा है
आसमान में
तेज धूप है
और सामने की चोटी पर
तुम बैठी हो
अपनी ही काटी घास के
गट्ठर पर पीठ टिकाए।

काले और भावहीन चेहरे पर
कई लकीरें भर डाली हैं जंगल ने
सूखती देह पर
पेड़, झाड़ियाँ और कैक्टस उग आये हैं
लेकिन इन पलकों में अब तक
हरी बेल वह झूल रही है
जिसमें जंगली फूल खिले थे
सुर्ख लाल अपने ही जैसे
आश्चर्य... इस फैले सन्नाटे में भी
कैसे न सुन पाया कोई
बसंत की आहट।

सबके ही तो कान लगे थे
उस दरवाजे की सांकल पर
जिसके भीतर तुम रहती थी
अकेली।
■

मेरी इच्छा

मन हो, ना हो
तन देना है इस रात मुझे
क्या करूँ? धंधेवाली हूँ।
और सवाल है अगले दिन का
जो आएगा इस रात के बाद
और जिसके अंधियारे के डर से
मैं चमकाऊँ ये रात।
मन हो, ना हो
तन देना है इस रात मुझे
क्या करूँ? ब्याहता हूँ।
और सवाल नहीं बस अगले दिन का
पर सारे जीवन का।
चाहे शराब की बू हो
या अपमान इस तरह रौंदे जाने का
बरसों से बार-बार
और मेरा अभिमान, अस्मिता
मेरी इच्छा
आह... मेरी इच्छा।
■

डॉ. साथी लुधिआनवी

पिछले पचास सालों से यू.के. में निवासरत एवं पंजाबी के जाने-माने कवि, निबंधकार, कहानीकार और पत्रकार के तौर पर ख्याति. अंग्रेजी, हिंदी और उर्दू में लिख़ते हैं. अनेकों किताबें प्रकाशित. दो दशक से रेडियो और टीवी पर काम कर रहे हैं. आपका लंदन के किस्मत रेडियो पर मल्टीलिंगूअल सोशीओ पॉलिटिकल डिस्कशन प्रोग्राम बहुत ही लोकप्रिय है. पंजाब सरकार के भाषा विभाग द्वारा १९८५ में पुरस्कृत. युनिवर्सिटी ऑफ ईस्ट लंदन द्वारा लाईफ़ टाईम अचीवमैंट इन ब्राडकास्टिंग एण्ड जर्नलिज़्म में डॉक्टर ऑफ आरट की उपाधि से सम्मानित.

सम्पर्क : drsathi@hotmail.co.uk

एक

गिरे हैं, उठेंगे, चलेंगे एक दिन
मंज़िल की जानब बहेंगे एक दिन

बहुत दिल जलाते हैं आज कल
यह दिलजले जलेंगे एक दिन

वसल के मुंतज़िर हैं हम तो
यहां नहीं तो वहां मिलेंगे एक दिन

अंधेरा है घर, रौशनी नहीं है
दीए हैं तो जलेंगे एक दिन

ग़मों का दौर चल रहा है तो
ग़मों के दिन ढलेंगे एक दिन

यह बस्तिओं में रहने वाले
फूलेंगे, फलेंगे इक दिन

दुनियाँ में हकूमत होगी लोगों की
लोग़ों के परचम झुलेंगे एक दिन

ऐ मौत ऐसी भी जल्दी क्या है
हां उधर भी चलेंगे एक दिन

मौसमे-फ़ज़ा के साथ पैग़ाम भी है
बहार आएगी फूल ख़िलेंगे एक दिन

बज़्म में दोस्त होंगे, 'साथी' होंगे
फ़िर दौर पे दौर चलेंगे एक दिन।

■

दो

उम्दा-सी कोई बात लिख़ो
शाम लिख़ो परभात लिख़ो

सच्च लिख़ने से डरो नहीं,
दिन को दिन और रात लिख़ो

जो होता है जीवन में
वैसे ही हालात लिख़ो

अग़र सकून है जीवन में
इस को इक सौग़ात लिख़ो

बालक को क्या चाहिए है
रोटी कलम दवात लिख़ो

नज़म तो इक वरदान है यार
काग़ज़ पर जज़बात लिख़ो

फ़ूलों जैसी नज़म लिख़ो,
कोमल-सी कोई बात लिख़ो

लिख़ो शनाख़त दुशमन की
लिख़ो तो उस की ज़ात लिख़ो

प्यार कीमती हीरा है
इस को इक सौग़ात लिख़ो

प्यार में मिली जुदाई को
अशकों की बरसात लिख़ो

मसत हवा, ख़ामोश फ़ज़ा
पूरे चांद की रात लिख़ो

'साथी' सब का 'साथी' है
उस को अपने साथ लिख़ो।

■

नीरज गोस्वामी

अगस्त १९५० को जम्मू में जन्म. अंतरजाल की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ग़ज़लें प्रकाशित. पेशे से इंजीनियर. अनेक विदेश यात्राएं कर चुके हैं. सम्प्रति - भूषण स्टील मुंबई में वाइस प्रेसिडेंट के पद पर कार्यरत.

सम्पर्क : neeraj1950@gmail.com

शायरी की बात

बात करने का अब मज़ा न रहा

मैं बहुत उलझन में था, इस किताब को ना जाने कितनी बार हाथ में लिया पढ़ा और रख दिया. समझ ही नहीं आ रहा था की क्या करूँ. आप ही बताईये जिस किताब की हर ग़ज़ल बेहतरीन हो उसमें से कौन-सी छोड़ूँ कौन-सी रक्खूं ये तय करना कितना मुश्किल काम है. एक ग़ज़ल चुनता तो दूसरी कहती 'हम से का भूल हुई जो ये सजा हम का मिली...'

मैं जिस किताब का जिक्र कर रहा हूँ उसका नाम है 'नकाब का मौसम' और शायर हैं जनाब योगेन्द्र दत्त शर्मा. इनकी शायरी खूबसूरत लफ्जों में हम सबकी दास्तान ही कहती है, कभी प्यार से दुलार से तो कभी फटकार से. अपने शेरों से वो हमें चौंकाते भी हैं और हर्षित भी कर जाते हैं, शब्द प्रयोग की एक बानगी देखिये...

हम जुड़े, पर अवान्छितों की तरह
पाए वरदान शापितों की तरह
हम उपेक्षित हैं गो की सम्मानित
फ्रेम में हैं सुभाषितों की तरह

कवि कथाकार के रूप में चर्चित और बहुत से सम्मानों से सम्मानित योगेन्द्र जी पिछले पैंतीस सालों से साहित्य साधना कर रहे हैं. आपके चार कविता संग्रह, एक कहानी संग्रह और एक ग़ज़ल संग्रह छप चुके हैं.

ग़ज़ल में हिंदी शब्दों का प्रयोग अब कोई नयी बात नहीं रह गयी है. योगेन्द्र जी ने ग़ज़ल में शब्द यूँ पिरोये हैं कि वे भरती के नहीं लगते, बल्कि ये एहसास करवाते हैं कि जो बात उस शेर में कही जा रही है उसे कहने के लिए वो ही शब्द बिलकुल सही है.

चांदनी, जंगल, मरुस्थल, भीड़, चौराहे, नदी
हर कहीं हिरनी बनी भटकी हुई है जिंदगी
टूटने का दर्द तुमको ही नहीं है आइनों
जिस्म के इस फ्रेम में चटकी हुई है जिंदगी

आप उनकी शायरी में जिंदगी जीने के हुनर ढूंढ सकते हैं. वो आपको सलाह भी देते हैं और आज के हालत पर सोचने को मजबूर भी करते हैं. बिना भारी बोझिल शब्दों का सहारा लिए उनके बात कहने का अंदाज़ मोह लेता है :

आ, कि अब मृतप्राय-से-इतिहास को जिन्दा करें
आदमियत के दबे एहसास को जिन्दा करें
सांस है तो आस है - कहते चले आए बुजुर्ग
आ, कि जीने, के लिए अब आस को जिन्दा करें

सब से खास बात इस किताब की ये है की इसमें कोई भूमिका नहीं है, किसी गणमान्य शायर या साहित्यकार की टिप्पणी नहीं है न ही किसी की शुभकामनाएं हैं. सीधी सादी इस किताब में आज का धड़कता वजूद है और वो भी अपने पूरे रंग में. आप ही बताईये जिस किताब की ग़ज़ल में ऐसे शेर हों उसे

> *इस संग्रह की ग़ज़लों में एक पूरम पूर जीवन की दमक और दिव्यता का काव्यांकन है तथा साथ ही गहन नियति के परिणाम स्वरूप धुंधलाते-बुझते असंख्य दीपों का खामोश क्रंदन भी, जो की जीवन की निजी और सार्वजनिक बोली है.*

किसी सहारे या फिर आर्शीवाद की जरूरत पड़ेगी ? धारदार सवाल हैं जो हमें, आप और हर संवेदन शील इंसान को व्यथित कर देते हैं :

हर तरफ अंधी सियासत है, बताओ क्या करें ?
रेहन में पूरी रियासत है, बताओ क्या करें ?
झुंड पागल हाथियों का, रौंदता है शहर को
और अंकुश में महावत है, बताओ क्या करें ?

बात कहने की उनकी इसी अनूठी विधा को अब जरा छोटी बहर में भी निहारें और देखें की कम लफ्जों में कैसे असर पैदा किया जा सकता है :

सोच कर बोलता हूँ मैं सबसे
बात करने का अब मज़ा न रहा
हाय वो जुस्तजू, वो बेचैनी
बीच का अब वो फासला न रहा

किताब घर प्रकाशन वालों ने मात्र पचास रुपये में, जिसे आप डिस्काउंट मांग कर पैंतालीस भी कर सकते हैं, शायरी की इस किताब को छाप कर हम पाठकों पर बहुत बड़ा उपकार किया है.■

डॉ. गौतम सचदेव

अविभाजित पंजाब के वारबर्टन नामक कस्बे में जन्म. दिल्ली वि.वि. से एम.ए., प्रेमचंद के कहानी-शिल्प पर पी.एच.डी., कवि, कहानीकार, व्यंग्यकार, आलोचक एवं प्रसारक के तौर पर ख्याति. १३ किताबें प्रकाशित. जिनमें प्रमुख हैं - साढ़े सात दर्जन पिंजरे, अटका हुआ पानी (कहानी संग्रह), सच्चा झूठ (व्यंग्य संग्रह), अधर का पुल, एक और आत्मसमर्पण, सूरज की पंखुड़ियाँ (कविता संग्रह). दिल्ली वि.वि. में २२ वर्षों तक अध्यापन. बीबीसी में दो दशकों तक प्रोड्यूसर- प्रसारक रहे. केम्ब्रिज वि.वि. में भी हिन्दी साहित्य का अध्यापन किया. डॉ. हरिवंश राय बच्चन सम्मान, पद्मानन्द साहित्य सम्मान और निष्काम सेवी सम्मानों से पुरस्कृत. सम्प्रति : स्वतन्त्र लेखन कर रहे हैं.

सम्पर्क : DrGsachdev@aol.com

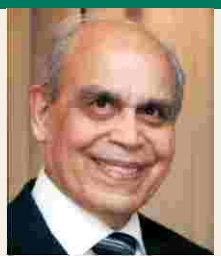

कहानी

टोमाटो कैचप

मैंने आप्रवासन और असाइलम (शरण माँगने) वग़ैरह के बीसियों मामलों की पैरवी की है. कुछ ही मामलों के बाद हम वकीलों के लिये अदालतों में केस लड़ना और उनकी पैरवी करना एक तरह का रुटीन बन जाता है. कोई केस हमें तभी तक याद रहता है, जब तक वह ख़त्म नहीं होता. उसके बाद हम अधिकांश मामलों और मुवक्किलों को भूल जाते हैं. हमारे लिये किसी के हारने या जीतने से ज़्यादा महत्त्व होता है हमारी साख का और हमारे धन्धे का यानि किसी केस में हार के कारण हम कमज़ोर वकील न मान लिये जायें और हमें आगे नये केस मिलने कम न हो जायें. एक वकील होने के नाते किसी केस की पैरवी के दौरान हमारा काम होता है लगन, ईमानदारी और सूझबूझ के साथ मुवक्किल की ओर से मज़बूत दलीलें, पक्के प्रमाण और विश्वसनीय गवाह पेश करना और ऐसे नुक़्ते ढूँढ़ कर जिरह करना, जिससे हमारी जीत की ज़्यादा से ज़्यादा सम्भावना हो या अगर हमारा मुवक्किल किसी मामले में फँस रहा हो, तो बच जाये, बस. इसके आगे उसकी क़िस्मत. पर कभी-कभी कोई हारा हुआ केस भी हमारे लिये महत्त्वपूर्ण बन जाता है और हमें याद रहता है.

वह नफ़ीसा का केस था, कोई तीन साल पुराना, जिसमें मैं सफल नहीं हो सकी थी. नफ़ीसा इराकी थी, मुश्किल से पन्द्रह-सोलह साल की. देखने में उतनी भी नहीं लगती थी. दुबली-पतली, लम्बी-सी नाक वाली, लेकिन अपनी तीखी भौंहों, पतले ओंठों, सुराहीदार लम्बी गर्दन और गहरे भूरे बालों के कारण वह बड़ी सुन्दर लगती थी, वीनस जैसी.

सुन्दर औरत अगर मुसीबतों में पड़ जाये, तो उसकी सुन्दरता या तो उसकी मुसीबतों को कम कराने का साधन बन जाती है या उन्हें बढ़ाने का. नफ़ीसा के लिये सुन्दरता मुसीबतों को बढ़ाने वाली सिद्ध हुई थी. वह जिसको नज़र आई या उसने जिससे सहारा माँगा, उसी ने उसे बुरी तरह चूसा था या नोच-नोचकर खाया था.

वह यू.के. में चोरी से घुसते हुए पकड़ी गई थी और मैं सरकार द्वारा उसकी ओर से वकील नियुक्त की गई थी. वह कई दिनों से डिटेंशन सेंटर में बंद थी और शायद कई तरह के अपमान और यातनाएँ भी झेल रही थी.

> *सुन्दर औरत अगर मुसीबतों में पड़ जाये तो उसकी सुन्दरता या तो उसकी मुसीबतों को कम कराने का साधन बन जाती है या उन्हें बढ़ाने का. नफ़ीसा के लिये सुन्दरता मुसीबतों को बढ़ाने वाली सिद्ध हुई थी.*

मुझसे पहली बार मिलने पर वह इतना रोई थी कि उसके आँसू दो दिनों से हो रही बारिश से भी ज़्यादा लगते थे. पहले तो वह ठीक-ठीक बता ही नहीं पाई. पूछने पर मेरी ओर फटी आँखों से देखने लगती. जब कुछ बताने लगी, तो बार-बार फफक उठती और देर तक काँपती रहती. उसके हाथ-पाँव नीले हो जाते, बर्फ़ की तरह ठंडे. बोलती तो ऐसे लगता, जैसे उसके छाले फूट रहे हों. उससे सब कुछ जानने के लिये मुझे उससे बाद में भी कई मुलाकातें करनी पड़ी थीं. छोटे और बड़े टुकड़ों में उसने जो कुछ बताया, उन्हें जोड़ने में मुझे काफ़ी मेहनत करनी पड़ी, लेकिन सब कुछ स्पष्ट हो जाने पर मुझे उससे बेहद हमदर्दी हुई. उन लोगों पर गुस्सा भी आया, जिनमें किसी संकटग्रस्त लड़की को देखकर सिर्फ़ और सिर्फ़ वहशत

पैदा हुई थी. बेचारी! उसकी जगह मैं होती, तो अब तक ज़िंदा न रहती.

आज एक और मामले में जिरह के लिये तैयारी कर रही थी, जब मुझे नफ़ीसा की याद आई और मुझे उसके केस की फ़ाइल पर फिर से नज़र दौड़ाना ज़रूरी लगा. सर्दियों के दिनों का अँधेरा कुछ ज़्यादा ही जल्दी घिर आया था. मैंने लाइट जलाकर फ़ाइल ढूँढी. खोलकर पढ़ने लगी, तो एक बार फिर मेरी आँखें नम हो गईं. कोई तीन बरस पुरानी बात थी, लेकिन ऐसे लगा, जैसे नफ़ीसा आकर फिर मेरे सामने बैठ गई हो और अपने साथ अपनी वही खंडहरों जैसी उदासी और निराशाजन्य भीगापन ले आई हो.

आप्रवासन अधिकारियों ने नफ़ीसा को टमाटरों के बक्से में से निकाला था, लेकिन वह मानती नहीं थी कि मैं चोरी से यू.के. आने के लिये उसमें घुसी थी. कहती थी पता नहीं मैं उसमें कैसे पहुँची. बस इतना याद है कि गुंडों ने मुझे ज़ंजीर से बाँधकर मेरे तन-मन को बुरी तरह तबाह किया था. शायद मैं उसी दौरान बेहोश हो गई होऊँगी. होश आया, तो मैं बक्से में थी और मेरी नाक में पेशाब और कुचले टमाटरों की मिली-जुली बदबू भरी हुई थी. मुँह, हाथ और पाँव जैसे लिज़लिज़ी चटनी से लथपथ थे. बालों में भी शायद वही चिपकी हुई थी और दिखता कुछ नहीं था. कपड़े भीगे थे. फिर यूँ लगा, जैसे बक्से को उठाकर कहीं पटका जा रहा हो. बक्सा उलटा-सीधा हो रहा था और मैं टमाटरों में दबी-घुटी कभी इधर लुढ़कती, कभी उधर. एक बार तो मैं बिल्कुल औंधी हो गई थी. तभी एक झटके के साथ बक्सा सीधा हो गया और मैं टमाटरों को पीसती-पिचकाती दबी-घुटी कुछ संतुलित हो सकी. मुँह, हाथ, पाँव और कपड़े चटनी जैसे रस से कुछ और लथपथ हो गये. बक्से में ज़रा भी जगह नहीं थी, न टाँगें सीधी करने की, न बदन. अंग-अंग टूट रहा था. बक्से के ऊपर जैसे लकड़ी की गाँठ निकल जाने से एक छोटा-सा छेद हो गया था, जिससे धूप की धारा आने लगी थी और उसकी सीध में आये टमाटर जैसे मेरे ख़ून से भरे बल्ब बन गये थे. साँस घुटने लगी, तो मैं अपने सिर को जितना ऊँचा कर सकती थी, करके चिल्लाई. बाहर से कुछ आवाज़ें आ रही थीं. कोई किसी को बुला रहा था. लगता था उसने मेरे सिर से हुई ठक-ठक को या मेरी चिल्लाहट को सुन लिया था, क्योंकि वह बक्से को खोलने लगा. तभी तरह-तरह के शोर के बीच किसी मशीन के चलने की आवाज़ आने लगी और पल भर में बक्से का ढक्कन खुलकर गिर पड़ा. मेरा गीला सिर टमाटरों से बाहर निकल आया, भीगे तरबूज़ जैसा. मेरे लिये कई घंटों की क़ैद ख़त्म हुई थी. मैंने खुलकर साँस ली, लेकिन आँखें रोशनी को सहन नहीं कर पा रही थीं.

बक्सा खोलने वाला चिल्लाया- सम्वन देयअ... कोई है...

अधिकारियों ने नफ़ीसा को टमाटरों के बक्से में से निकाला था, लेकिन वह मानती नहीं थी कि मैं चोरी से यू.के. आने के लिये उसमें घुसी थी. कहती थी पता नहीं मैं उसमें कैसे पहुँची.

यह कहते हुए उसने अपने दोनों हाथ टमाटरों में खोंसे और मुझे बाहर खींच लिया. वाउ... अ यंग गअल...

उसका शोर सुनकर पाँच-सात लोग और जमा हो गये, जिनके पीछे-पीछे दो महिला कांस्टेबुल और दो वर्दीधारी इंस्पेक्टर भी आ पहुँचे.

बक्सा खोलने वाला बड़े उत्साह से बता रहा था- देखा, मैं न कहता था बक्से में कोई है!

एक अन्य व्यक्ति बोला- अबे जा, बक्से से पेशाब टपक रहा था. अन्धा भी समझ जायेगा अंदर कोई है. क्या हम देखते नहीं, रोज़ ही आ जाता है कोई, कभी किसी माल के साथ, कभी किसी के.

महिला कांस्टेबुलों ने मेरे दोनों बाज़ू पकड़े और धकेलकर एक ओर ले जाने लगीं. बदन पहले ही दुख रहा था, उनके धक्कों से मेरी चीख़ें निकलने लगीं. लेकिन उन्होंने जैसे न कुछ देखा, न सुना और मुझे हाँककर एक कमरे में ले गईं. एक ने बड़ी बेरुखी से मेरी ओर कुछ कपड़े फेंक दिये- अजीब-से रंग का ढीला-ढाला ब्लाउज़, बोरेनुमा स्कर्ट, जाँघिया और बड़ी-बड़ी थैलियों जैसी ब्रा. तभी एक महिला कांस्टेबुल मुझे घसीटकर उस कमरे से सटे बाथरूम में ले गई और कड़कते हुई बोली- नाउ चेंज, यू स्टिंकिंग स्वाइन. ब्लडी फ़... होअ. फ़क... टमाटरों में बैठकर आई है. हम क्या तेरा कैचअप बनायेंगे? आ जाती हैं पता नहीं कहाँ-कहाँ से, बट् डोंट यू वई, तुझे भेजेंगे बॉटल में ही.

नफ़ीसा का यह वृत्तांत मैंने दो अलग-अलग मुलाक़ातों में नोट किया था. वह कभी बाद की घटनाएँ पहले बताने लगती, कभी पहले की बाद में, बेतरतीब. मुझे उससे बार-बार पूछना पड़ता, तब कहीं कुछ स्पष्ट होता. तीसरे दिन वह कुछ स्वस्थ हुई, लेकिन तब भी बेफ़िक्र होकर नहीं बताती थी. पहले उसे मुझ पर भी शक हुआ था कि पता नहीं मैं उसे फँसा रही हूँ या... ख़ैर, कुछ देर बाद जब उसे लगा कि मुझे सब कुछ बता देने में ज़्यादा भला है, तो बोली- मैं कुछ ज़्यादा अंग्रेज़ी तो नहीं जानती, लेकिन इतना ज़रूर समझती हूँ कि कल वाली पुलिस कांस्टेबुल मुझे बड़ी गंदी गालियाँ दे रही थी, मर्दों वाली फ़ोह्श गालियाँ... बार-बार फ़क्... फ़क्... बोलती थी.

मैंने अभी बाथरूम का दरवाज़ा खोला ही था कि उसने मुझे बाहर खींच लिया. माना कि मैं आपके मुल्क में बक्से में आई हूँ. पर उसमें मेरा क्या कुसूर. तो भी सोच रही थी -

क्या ब्रिटिश महिला पुलिस भी हमारे इराक़ी पुलिसमैनों जैसी होती हैं, ज़ालिम और बदज़बान! क्या वह मुझसे अदब से बात नहीं कर सकती थी?

उसने मेरी दोनों बाँहें मरोड़ते हुए जूते से बाईं पिंडली पर ठोकर मारी और एक कुर्सी के पास ले जाकर गरजते हुए बोली- नाउ सिट डाउन यू फ़... बिच. मैं बैठ रही थी, तो भी उसने मुझे बड़ी बेरहमी से कंधों से दबाया और लोहे की नंगी कुर्सी पर बिठा दिया.

तभी एक मोटा-सा पुलिसमैन आकर मेरे सामने बैठ गया और बोला- यू अंडअस्टेंड इंग्लिश?

मेरे- हाँ कुछ-कुछ - कहते ही वह बोला - तुम स्पेन से आ रही हो न, क्यों?

मैंने हाँ में सिर हिलाया.

लेकिन मैं देख रहा हूँ तुम स्पेनिश नहीं हो. कहाँ की हो?

मैं चुप रही.

मिडल ईस्ट? टअकी? ईरान? अफ़ग़ैनिस्टैन? पैकिस्टैन?

मैंने कोई जवाब नहीं दिया.

उसने डंडा दिखाते हुए कहा- बताओ.

मैंने कहा- मैंने बताया तो है स्पेन.

लेकिन तुम वहाँ कैसे गई, कहाँ से? कौन लाया?

मेरे चुप रहने पर उसने डंडा मेरी छाती में ठूँसते हुए कड़कती आवाज़ में पूछा- स्पेन में कौन लाया तुम्हें? कैसे गई वहाँ?

बदन का हर हिस्सा बुरी तरह दुख रहा था, डंडा चुभने से सीना और अधिक दुखने लगा. जब उसने डंडा कुछ और चुभाया, तो मेरी चीख़ निकल गई. मुझे रोते हुए भी बताना पड़ा- मेरा भाई यूसुफ़. उसके साथ गई थी.

कहाँ रही ?

वह मुझे अपने दोस्त सादिक़ के घर ले गया था, लेकिन वह धोखेबाज़ निकला.

यह कहकर मेरे ख़ामोश होते ही उसने फिर डंडा उठाया, तो मैं बताने लगी- पुलिस से बचने के लिये अपाहिज यूसुफ़ छुपता फिर रहा था. जाते-जाते कह गया था- कोई पूछे, तो कहना मैं सादिक़ की बीवी हूँ. सादिक़ ने इसका फ़ायदा उठाया और रात को मुझे कई बार रेप किया, गरदन पर छुरा रखकर. अगले दिन शाम को वह यह कहकर मुझे कहीं ले गया कि तुम्हें यूसुफ़ के पास छोड़ने जा रहा हूँ.

> वह एक अँधेरी-सी जगह थी, बहुत गंदी, पुरानी, टूटी-फूटी. जगह-जगह धूल भरा टूटा फ़र्नीचर पड़ा था, लेकिन यूसुफ़ वहाँ नहीं था. सादिक ने मुझे एक ओर खड़ा किया और सीधा उस खंडहर के दूसरे हिस्से की ओर चला गया.

चौथी मुलाक़ात होने पर नफ़ीसा फिर रोने लगी. उस दिन मौसम धूप-छाँव वाली आँख मिचौली खेल रहा था. मैं कभी उसे चुप कराती और समझाती, कभी दूर बैठे सफ़ेद सीगल्ज़ के जोड़े को देखने लगती, जो रह-रहकर क्रेंकार करते और अपनी पीली चोंचें जोड़ने लगते थे. आधा घंटा ऐसे ही बीत गया. नफ़ीसा की हालत देखकर मुझे मजबूरन उसे अगले दिन मिलने का समय देना पड़ा. मिलने पर उसने बताया :

वह एक अँधेरी-सी जगह थी, बहुत गंदी, पुरानी, टूटी-फूटी. जगह-जगह धूल भरा टूटा फ़र्नीचर पड़ा था, लेकिन यूसुफ़ वहाँ नहीं था. सादिक ने मुझे एक ओर खड़ा किया और सीधा उस खंडहर के दूसरे हिस्से की ओर चला गया, जहाँ तीन-चार हट्टे-कट्टे गुंडेनुमा लोग खड़े थे. वह उनसे बातें करने लगा. दूर से कुछ सुनाई नहीं देता था, लेकिन उसके चेहरे, हाव-भाव और इशारों से लग रहा था कि वह मुझे बेचने लाया था. उन लोगों ने जब उसे नोट थमाये, तो मुझे कोई संदेह नहीं रहा. ऐसे ही तुर्की में भी हुआ था. मैं बाहर की ओर भागी, लेकिन सादिक़ ने देख लिया. उसने दौड़कर अड़ंगी दी. मैं गिर पड़ी. मेरे घुटने बुरी तरह छिल गये, फिर भी मैं उठी, लेकिन उसने झपटकर मुझे गर्दन से दबोच लिया और गालियाँ देने लगा.

इतने में मुझे ख़रीदने वाले बदमाश वहाँ पहुँच गये और मुझे एक झटके में उठाकर ऐसे अंदर ले गये, जैसे कसाई ज़िबह करने के लिये भेड़-बकरा ले जाते हैं. उन्होंने मुझे ज़ंजीरों से बाँध दिया और मेरे कपड़े फाड़ दिये. फिर तो उन्होंने मेरी ऐसी दुर्गति की, जैसी तब तक किसी ने नहीं की थी. रात हो चुकी थी. कभी कोई आता, कभी कोई और जंगली जानवर होने का सुबूत देने लगता.

लेकिन तुम भाई के साथ कहाँ से आई थी? मोटा सिपाही फिर गरजा.

यूसुफ़ ने सख़्त ताकीद की थी कि हरगिज़ नहीं बताना कि हम इराक़ के हैं और न ही यह कि हम किन देशों से होते हुए आये हैं.

मोटे पुलिसमैन ने हाथ आगे बढ़ाकर मेरे बाल खींचे और मुझे थप्पड़ मारा- यू केम टू स्पेन बट ब्लडी हैल् कहाँ से?

बालों के खिंचने से मैं बुरी तरह कराहने लगी. पूरा बदन धोबी द्वारा फींचा कपड़ा हो ही रहा था. मुझसे और अत्याचार सहन नहीं हुआ. मैंने सच-सच बता दिया. हम इटली होते हुए स्पेन पहुँचे थे, लेकिन उस मोटे को फिर भी विश्वास नहीं हुआ. जब उसने फिर डंडा उठाया, तो मैंने बता दिया कि हम इराक़ से तुर्की गये थे और वहाँ से साइप्रस. साइप्रस से एक समुद्री जहाज़ द्वारा हम इटली गये थे.

मोटे सिपाही ने मुझे ग़ौर से देखा और महिला पुलिसकर्मी से बोला- वी नीड ऐन् ऐरेबिक इंटरप्रेटर फ़ॉअ

दिस टोमाटो कैचप. तब वह महिला पुलिसकर्मी मुझे बग़ल की एक अन्य इमारत में ले गई, जहाँ सीखचे लगे हुए थे. उसमें कई औरतें क़ैद थीं. मुझे भी उनके साथ बंद कर दिया गया. वह दिन और रात मैंने बड़ी तक़लीफ में काटे, लेकिन शुक्र है अगले दिन एक डॉक्टर हमारा मुआयना करने आया. उसके आने से पहले उस जेलख़ाने में धुएँ जैसी कोई चीज़ छोड़ी गई थी और सब औरतें खाँसने लगी थीं.

डॉक्टर के जाने के बाद मोटे सिपाही के साथ एक अरबी इंटरप्रेटर आया. उसने खोद-खोदकर पूछताछ की. इराक़, वहाँ के मेरे शहर और माँ-बाप के बारे में पूछा. तरह-तरह के और भी कई सवाल किये. यूसुफ़ भाई के बारे में पूछा. आख़िर उसे यक़ीन हो गया कि मैं झूठ नहीं बोल रही हूँ, वाक़ई इराक़ी हूँ और मोसुल से आई हूँ.

दो दिन बाद मैं नफ़ीसा से फिर मिली.

मोसुल पर अमरीकी फ़ौजों ने हवाई बमबारी की थी - यह बताते हुए उसका रोना बंद ही नहीं होता था. मैंने उसे बहुत दिलासा दिया और उठकर गले से भी लगाया. बड़ी मुश्किल से वह कुछ सहज हो सकी. कहने लगी- वह बेहद काली रात थी. बस कभी-कभी किसी पिल्ले का रिरियाना सुनाई दे जाता. अचानक हमारे पड़ोस में बम गिरा. आसमान में हवाई जहाज़ इधर से उधर दौड़ने और बम गिराने लगे. कभी इधर धमाका होता, कभी उधर और मकानों के गिरने के साथ ही चीखने-चिल्लाने की आवाज़ें आने लगतीं. हम कहीं अपने घर में ही न दब जाएँ, इसलिये बाहर निकले, पर बाहर पाँव रखते ही मेरे माँ-बाप बम की चपेट में आ गये. मैं और यूसुफ़ यह भी न देख पाये कि उनका क्या हुआ और दौड़कर वापस घर के तहख़ाने में जा छुपे. साँस रोके भूखे-प्यासे तीन दिन हम उसी में दुबके रहे. हमारे मकान पर भी बम गिरा और उसका अगला हिस्सा गिर गया. फ़ौजी इधर-उधर आ-जा रहे थे, लेकिन अल्लाह का शुक्र है, हमारे तहखाने पर किसी की निगाह नहीं पड़ी. फ़र्श में बना उसका ढक्कन नुमा दरवाज़ा मलबे से ढक गया था. दूसरे ढक्कन पर, जहाँ से हम उसमें घुसे थे, घर का एक और दरवाज़ा आ गिरा.

तीसरी रात हम दरवाज़ा खिसका कर किसी तरह बाहर निकले. हर तरफ़ मौत पसरी हुई थी. छुपते-छुपाते हम सीमा पार कुर्दों के इलाक़े में पहुँच गये, लेकिन उन्होंने हमें पकड़ लिया और हमसे सब कुछ छीन लिया. एक आदमी छाती पर बंदूक रखकर मुझे घसीटता हुआ एक मकान में ले गया, जहाँ उसने मेरी इज़्ज़त लूटी. मैं लहू-लुहान हो गई, बिल्कुल मुर्दा. अपनी आग ठंडी करने पर जब उसने हमें जाने दिया, तो मुझसे चला नहीं जाता था. यूसुफ़ ने उनकी लूटमार का विरोध किया था, इसलिये उन्होंने उसे बुरी तरह पीटा था और बाँधकर कहीं दूर डाल दिया था. बाद में जब वह मुझसे मिला तो मुझसे भी ज़्यादा मुर्दा दिखाई देता था.

मेरी हालत देखकर उसने एक कुर्द से एके-४७ छीनी और उस कुर्द को निशाना बनाकर घोड़ा दबाने ही वाला था कि दो अन्य कुर्दों ने उसे धक्का देकर गिरा दिया. जिस कुर्द की एके-४७ छिनी थी, वह भाई पर झपटा, लेकिन सफ़ेद दाढ़ी वाले एक बुज़ुर्ग ने उसे यह कहकर रोक दिया- जाने दो, मुसीबतज़दा हैं.

तब राइफ़ल तानकर उसने हमें हुक्म दिया- बिना मुड़कर देखे नाक की सीध में चले जाओ. किसी तरह गिरते-पड़ते हम आगे बढ़े.

इस मुलाक़ात के बाद नफ़ीसा से मेरी लगभग एक हफ़्ता मुलाक़ात नहीं हो सकी, क्योंकि मैं एक और आप्रवासी के केस में उलझ गई थी. आठवें दिन जब मैं नफ़ीसा से फिर मिली, तो वह काफ़ी डरी हुई थी. कहने लगी- मैंने समझा, अब शायद आप नहीं आएँगी और ये मुझे वापस स्पेन भेज देंगे. डिटेंशन सेंटर के गार्ड और कई औरतें भी यही कहती थीं. मैंने उसे तसल्ली दी कि फ़िलहाल ऐसा कुछ नहीं होगा. पहले तुम्हारे मामले की अदालत में सुनवाई होगी. उसके बाद ही कोई फ़ैसला होगा. उसे विश्वास नहीं हुआ. वह कभी मुझे देखती, कभी खिड़की से बाहर उड़ते पक्षियों को. मेरे बार-बार दिलासा देने पर उसने बताया -

कुर्दों के इलाक़ेवाली सड़क पर एक ट्रक जा रहा था. यूसुफ़ ने अभी उसे रुकने का इशारा भी नहीं किया था, तो भी वह रुक गया. हम कुएँ से निकलकर खाई में गिरने जा रहे थे, क्योंकि उस ट्रक में राइफ़लें लिये जो तीन लोग बैठे थे, वे मुसीबतज़दा औरतों को पकड़ने और बेचने का धंधा करते थे. वे उन्हें इस्तंबोल ले जाते थे और हम जैसी छोटी-बड़ी लड़कियों को सैलानियों के लिये गरम और सस्ता गोश्त बना देते थे. और वहाँ आने वाले सैलानी? वे तो पता नहीं कबके भूखे होते हैं.

कोई तीन महीने मैं इसी तरह हर रोज़ उनका कबाब बनती रही. आगे मेरे साथ जहाँ जो-जो हुआ, वह भी तक़रीबन इसी तरह का था. बलात्कार और बिक्री, इन्सानी कुत्तों ने मेरे साथ कहीं रहम नहीं किया. इतना नुचने और फाड़े-चबाये जाने के बावजूद मैं साबित कैसे रही, नहीं जानती. लेकिन यूसुफ़ साबित नहीं रह सका. मेरी हालत देखकर वह मुझे मारना और फिर आत्महत्या कर लेना

> *इसका यह अपराध भी मामूली नहीं है कि इसने हमारी आँखों में धूल झोंककर यू.के. में घुसना चाहा. क़ानून तोड़ने वाले ऐसे धोखेबाज़ आप्रवासियों के साथ कोई रिआयत नहीं की जानी चाहिये.*

चाहता था. उसने कई बार कोशिश भी की, लेकिन कर नहीं सका. मैं खुद भी जीना नहीं चाहती थी, लेकिन गुंडों ने मुझे इस तरह दबोच रखा था कि एक पल के लिये भी अकेला नहीं छोड़ते थे. हर वक़्त कोई-न-कोई सिर पर खड़ा रहता. एक तो मेरा दिन रात का पहरेदार बना हुआ था. तंग आकर यूसुफ़ एक ट्रक के आगे कूद गया, लेकिन क़िस्मत पता नहीं हमारे साथ क्या खेल खेल रही थी. वह उस ट्रक के नीचे आकर भी मरा नहीं, क्योंकि ट्रक वाले ने ऐन वक़्त पर पूरे ज़ोर से ब्रेक लगाया था. यूसुफ़ का अंजर-पंजर टूट गया. न जाने मेरे पहरेदार गुंडे को उस पर कैसे रहम आया. वह उसे अस्पताल ले गया और उसने मुझे भी उसकी तीमारदारी करने की इजाज़त दे दी. मैं उसके पहरे में ही अस्पताल जाती, पहरे में ही आती. एक दिन यूसुफ़ ने मेरी ओर देखते ही कहा- मार दे मुझे नफ़ीसा, मार दे. और तू भी जीकर क्या करेगी? चल अम्मी-अब्बू के पास चलते हैं. मैं आज़ाद होती, तो ज़रूर उसका कहना मान लेती.

आख़िर जब यूसुफ़ को अस्पताल से छुट्टी मिली, तो उसी गुंडे ने उसे बैसाखियाँ लाकर दी थीं. फिर पता नहीं क्यों, उन लोगों ने हम दोनों को चोरी-छिपे साइप्रस भिजवा दिया.

...लेकिन नफ़ीसा छूटकर भी छूट नहीं सकी थी. उन जिस्मफ़रोशों ने उसे एक अन्य गिरोह को बेच दिया था, जिसने उसे तरह-तरह के हथकंडे अपनाकर साइप्रस से इटली और वहाँ से स्पेन पहुँचवाया था. शुक्र है उन्होंने यूसुफ़ को मेरे साथ ही जाने दिया, वरना पता नहीं, वह क्या कर बैठता.

नफ़ीसा आख़िरी बार स्पेन में बिकी थी, लेकिन तब तक यूसुफ़ उससे हमेशा के लिये बिछुड़ चुका था. अगले दिन जब वह सादिक़ के पास पहुँचा था, तो सादिक़ ने उसे बताया था कि नफ़ीसा रात को कहीं भाग गई. यह सुनकर यूसुफ़ ने क्या किया, कौन जाने, लेकिन मेरा दिल कहता है, उसने ज़रूर ख़ुदकुशी कर ली होगी.

नफ़ीसा को ख़रीदने वाले नये गिरोह ने उसे टमाटरों के साथ यू.के. भेजकर निश्चय ही अपने साथियों के या जिस्मफ़रोशों के किसी अन्य गिरोह के हवाले किया होगा.

तब तक नादान नफ़ीसा एक और मुसीबत में फँस चुकी थी, जिसका अभी किसी को पता नहीं था.

मैंने नफ़ीसा की ओर से पैरवी करते हुए अदालत से माफ़ी की अपील की. मैंने तर्क दिया कि वह इतनी बार बेची जा चुकी है और शारीरिक तथा मानसिक रूप से इतनी अधिक तोड़ी जा चुकी है कि उसे असाइलम (शरण) देकर ही उसकी जान बचाई जा सकती है. अगर वह वापस स्पेन भेजी जायेगी, तो यक़ीनन फिर उन्हीं या किन्हीं अन्य गुंडों के चंगुल में फँस जायेगी. बहुत सम्भव है वे इसे मार ही दें.

मामले की सुनवाई के दौरान अचानक एक दिन वह अदालत में ही बेहोश होकर गिर पड़ी. उसे तत्काल डॉक्टरी सहायता उपलब्ध कराई गई और उसके मामले की सुनवाई रोक दी गई. डॉक्टरी जाँच से पता चला कि वह गर्भवती थी.

नफ़ीसा की हालत सुधरने पर जब सुनवाई फिर शुरू हुई, तो बॉर्डर एंड इमिग्रेशन एजंसी ने मेरे तर्कों का पूरा विरोध किया. उसने कहा- अव्वल तो यह असाइलम माँगने के लिये आई ही नहीं थी, शरीर का धन्धा करने के लिये आई या भेजी गई थी. अगर यह उस गिरोह को पकड़वा दे, जिन्होंने इसे फँसाया और यहाँ भेजा है, तभी इसके मामले पर पुनर्विचार किया जाना चाहिये, वरना नहीं. इसका यह अपराध भी मामूली नहीं है कि इसने हमारी आँखों में धूल झोंककर यू.के. में घुसना चाहा. क़ानून तोड़ने वाले ऐसे धोखेबाज़ आप्रवासियों के साथ कोई रिआयत नहीं की जानी चाहिये.

मैंने उसके गर्भवती होने के आधार पर फिर रहम की अपील की और कहा कि अधिक नहीं, तो उसे यू.के. में अस्थायी शरण ही दे दी जाये. लेकिन अदालत ने अन्त में यही फ़ैसला सुनाया कि अगर इसे अस्थायी शरण भी दी जायेगी, तो इसके प्रसव का और फिर इसके होने वाले बच्चे की देखभाल का सारा बोझ सरकार पर आ पड़ेगा. यही नहीं, अगर अवैध आप्रवासियों का यूँही लिहाज़ किया जाता रहा, तो यू.के. ऐसे लोगों से भरता चला जायेगा. नफ़ीसा को ज़रूर वापस स्पेन भेजा जाना चाहिये और अगर यह चाहे, तो इसे वहाँ जाकर असाइलम के लिये आवेदन करना चाहिये. चूँकि इसने यह भी बताया है कि वहाँ पर मेरा भाई है, इसलिये हमें विश्वास है वह इसकी और इसके बच्चे की रक्षा और सहायता कर सकता है.

अदालत ने मेरी इस दलील को भी नामंज़ूर कर दिया कि नफ़ीसा अपने भाई को कैसे ढूँढेगी और अगर उसने आत्महत्या कर ली होगी, जैसा कि यह मानती है और जैसा कि हालात से भी लगता है, तो यह किसके पास रहेगी.

जब अदालत द्वारा नफ़ीसा को 'डिपोर्ट' किये जाने के ऑर्डर जारी हुए थे, तब मैंने उसकी ओर से एक बार फिर रहम की अपील की थी कि इसे चाहे जेल की सज़ा दो, लेकिन स्पेन मत भेजो, लेकिन अदालत ने मेरी उस अपील को भी स्वीकार नहीं किया और नफ़ीसा को वापस भेज दिया गया.

मुझे विश्वास था कि वहाँ पहुँचकर उसने मुझे ज़रूर फ़ोन करना चाहा होगा, क्योंकि मैंने उसे अपना फ़ोन नंबर देते हुए बाद में भी सहायता का वचन दिया था.

कुछ महीने मैंने उसके फ़ोन का इंतज़ार किया, लेकिन वह नहीं आया. आख़िर अन्य मामलों में उलझकर धीरे-धीरे मैं उसे भूलती गई.

आज उसके केस की फ़ाइल दुबारा पढ़ रही हूँ, तो सोचती हूँ- अगर अब कोशिश करूँ, तो क्या मैं उसे ढूँढ सकूँगी और क्या उसकी कोई सहायता कर सकूँगी? पता नहीं, वह ज़िंदा भी है या नहीं और अगर न हुई, तो क्या मैं उसके बच्चे के लिये कुछ कर सकूँगी? पता नहीं क्यों, मुझे लगता है कि किसी-न-किसी रूप में मैं भी नफ़ीसा की अपराधिनी हूँ.

■

प्रतिक्रिया

गर्भनाल के ६७वें अंक में प्रकाशित 'व्याख्या' के व्याख्याकार मनोज कुमार श्रीवास्तव मननशील साहित्यकार हैं यह सत्य उनकी कृतियों से स्पष्ट विदित होता है. इन्होंने विभिन्न विधाओं में गुरुता पाई है. तुलसीकृत रामचरित मानस के सुन्दरकाण्ड पर इन के छः खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं. मनोज जी ने सुन्दरकाण्ड का अध्ययन, तुलना, मीमांसा तब तक किया है कि और कुछ कहने को बाकी न रह जाये.

सौन्दर्य की परिभाषा क्या है या क्या होनी चाहिये इसको स्थापित करने के लिये और तुलसी ने पाँचवे काण्ड को सुन्दर काण्ड क्यों कहा इसकी सहमति के लिये मनोज जी ने स्वदेश, विदेश और कालान्तर में कहे सौन्दर्य की विभिन्न परिभाषाओं को प्रस्तुत किया है.

संत तुलसी ने सौन्दर्य को छवि नहीं स्थिति बताया है. माता सीता जब रावण के चंगुल में फँसी थी तब राजसी साज-सज्जा के बगैर भी हनुमान द्वारा लाई श्रीराम की अँगूठी पाने के दृश्य को तुलसी ने सुन्दर कहा है क्योंकि निराश सीता को आशा की किरण नजर आई. क्षुधा से पीड़ित हनुमान को फल सुन्दर लगे क्योंकि इसमें जीवन शक्ति है.

सौन्दर्य जो स्थायी होता है उसमें भ्रम कम और आत्मा का बोध अधिक होता है. श्रृंगार में सामयिक आकर्षण शक्ति होती है पर आन्तरिक सौन्दर्य ही परम आनन्द और सुख का मूल है. ये बारीकी से देखने की बात लेखक की सूक्ष्म दृष्टि से नहीं बची. मनोज जी उद्धृत करते हैं - 'सौन्दर्य का दुरुपयोग करना या सौन्दर्य को नष्ट करना दोनों ही पाप हैं.'

इस प्रकार अनेक दृष्टिकोण और तर्क से मनोज जी ने अपने सत्य को प्रस्तुत किया है और तुलसी के सुन्दर काण्ड नाम से सहमति प्रगट की है.

भारत के वैदिक काल से चलती आई परम्परा में भी शोभा और सौन्दर्य को उसकी सार्थकता और परहित में ही निहित बताया है - *विनय शोभते विद्या, कुलम् शीलेन शोभते/नीति एव शोभते राज्यम्, पाणीः दानेन शोभते.*

सुन्दर काण्ड जिसमें क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर इन ५ तत्वों की विस्तारपूर्वक चर्चा है, वह अपनी महत्ता के कारण ही जन साधारण और राम भक्तों में सबसे अधिक प्रिय और प्रचलित काण्ड है, जिसका पाठ प्रायः मंदिरों और घरों में बड़ी श्रध्दा से किया जाता है.

मीरा गोयल, अमेरिका

गर्भनाल में प्रकाशित मनोज जी की 'व्याख्या' पढ़ने से पूर्व सुन्दरकाण्ड मैंने इतने विस्तार से नहीं पढ़ा था कि जान पाता कि 'सुन्दर' नाम का स्थान लंका में है, जहाँ अशोक वाटिका में सीता जी को रावण ने रखा था. यदि ऐसा है तो इसमें दो राय नहीं होनी चाहिये कि इस काण्ड का नाम सुन्दर काण्ड क्यों? वैसे और विवरण इस काण्ड में है, किन्तु, यह काण्ड, मुख्य तो सीता जी के दुखी और विरह स्थान की कथा को लेकर ही लिखा है, इसीलिये इसका नाम इस स्थान को लेकर ही होना चाहिये, जैसे कि दूसरे काण्डों के नाम अयोध्या, अरण्य, लंका, किष्किन्धा है. वैसे सभी रामायण प्रेमी इस काण्ड की सुन्दरता से प्रभावित हैं, नाम पर प्रश्नोत्तर करते हैं, किन्तु मेरी राय से नाम तो कथा के मुख्य संदर्भ से ही जुड़ा होना चाहिये.

हरिबाबू बिन्दल, अमेरिका

पहले तो मैंने सुन्दरकाण्ड की व्याख्या सरसरी तौर से पढ़ी, फिर दुबारा विस्तृत में पढ़ी. जानकारी तो रोचक है किन्तु आठ पन्नों को पढ़ते-पढ़ते बोरियत होने लगती है. यदि इस व्याख्या को तीन पन्नों तक सीमित रखा जाता तो मनोरंजकता और रोचकता बनी रहती.

उमेश ताम्बी, अमेरिका

सुन्दरकाण्ड लेख विस्तार में है और मौलिक है. हालांकि मेरा व्यक्तिगत रुझान इस तरह के लेखों की ओर है और इसमें काफी कुछ लिखा गया है, लेखन शैली भिन्न होने के कारण हो सकता है अनेकों को रुचिकर न लगे.

देवेश पंत, अमेरिका

इस आलेख को पढ़ने से कुछ समय पहले ही इस नामकरण पर एक बड़े भाई और एक बड़ी बहन से सीमित चर्चायें हुई थीं. तुलसी को बहुत कम समझा है, इसलिये खुद कुछ अधिक कहने का अधिकारी नहीं हूँ. आलेख अच्छा है, इसमें साहित्यिक सौन्दर्य भी है और मानस से सम्बन्धित एक सामान्य प्रश्न से जुड़ी चर्चा भी. हाँ, भूख कमाये हुए, क्रांति आदि शब्दों का आरोपण (शायद केवल मुझे) थोड़ा खलता है. हनुमान जी ही नहीं, सीता जी के सन्दर्भ में भी शब्दों में लेखक कुछ मितव्ययी हो सकता था. अनेक विदेशी सन्दर्भ भी एक सामान्य पाठक को ओवरव्हैल्म कर सकते हैं. कुल मिलाकर आलेख में लेखक की दृष्टि दिखती है परंतु साथ ही काफ़ी वर्बोसिटी भी.

अनुराग शर्मा, अमेरिका

सदा की भाँति गर्भनाल का ६७वां अंक देख कर प्रसन्नता हुई. गर्भनाल केवल एक बैठक में पढ़ने वाली पत्रिका नहीं है. इसमें प्रकाशित प्रत्येक आलेख, विचार, नजरिया कथा-कहानी, गीता-सार आदि सामग्री संग्रहणीय तो है ही साथ ही पठन, मनन एवं चिंतन योग्य है.

इस अंक में मनोज श्रीवास्तव जी के आलेख 'सुन्दरकाण्ड का नाम सुन्दरकाण्ड क्यों' ने विशेष रूप से प्रभावित किया. इस लेख में सौंदर्य की परिभाषा को विस्तार दिया गया है.

तुलसी सौंदर्य को एक छवि की तरह नहीं एक स्थिति की तरह मानते हैं जिसमें स्पंदन है, गति है और कर्म का कंपन है. पूर्ण लेख पढ़ने के बाद यह बात स्पष्ट हुई कि तुलसी रामायण के 'सुन्दरकाण्ड' के नाम का आधार प्राकृतिक सौंदर्य की अपेक्षा कर्म की परिणति से अनुभूत आंतरिक सौंदर्य है और यही वास्तविक सौंदर्य है. अर्थात सुन्दरकाण्ड केवल बाह्य सौंदर्य का बखान नहीं करता, अपितु अपने पुरुषार्थ के आधार पर राम कथा के प्रत्येक पात्र द्वारा कर्म के आधार पर अपने ध्येय की प्राप्ति से अनुभूत आत्मिक सौंदर्य का वर्णन करता है. पूरे आलेख का सार है 'भाग्य के विरुद्ध पुरुषार्थ की प्रतीक पाँचों उँगलियों का काण्ड ही सुन्दरकाण्ड है.'

लेखक ने इस आलेख में विश्व के विभिन्न विचारकों के विचारों के उदाहरण देते हुए इस बात को स्पष्ट किया है कि तुलसी सोलहवीं शती में ही सौंदर्य को एन्द्रिक न मान कर कर्म पर केंद्रित कर गए थे. लेख के आरम्भ में ही मनोज जी ने लिखा है कि सुन्दरकाण्ड का नाम तुलसी ने उस समय दिया जब रामायण की प्रत्येक कथा-अंतर्कथा में पुरुषार्थ विजयी होता है. इस शोधपूर्ण, संग्रहणीय आलेख के लिए मनोज जी को बहुत बहुत धन्यवाद तथा बधाई.

इस आलेख को पढ़ते हुए मुझे वर्ष १९७१ की एक घटना याद आई. मेरे पति १९७१ के भारत-पाक युद्ध के समय सीमा पर तैनात थे और भीषण युद्ध में उनका कोई समाचार नहीं मिल रहा था. मैं नव विवाहिता थी और युद्ध के भयंकर परिणामों से डरती थी. तभी एक दिन मुझसे मिलने एक सज्जन आये और उन्होंने मेरे हाथ में 'सुन्दरकाण्ड' की एक प्रति दे कर कहा, बेटी, इसका नियमित पाठ करो, भगवान सबकी रक्षा करेगा. आज मैं इस आलेख को पढ़ कर गदगद हो गई. उस युद्ध में भारत की विजय हुई, बँगला देश स्वतंत्र हुआ. अर्थात कर्म की, उद्यम की, पुरुषार्थ की विजय हुई. आभार गर्भनाल.

शशि पाधा, अमेरिका

गर्भनाल पत्रिका के जून २०१२ अंक में मनोज कुमार श्रीवास्तव जी द्वारा लिखित 'सुन्दरकाण्ड का नाम सुन्दरकाण्ड क्यों' पढ़ा जो बहुत अच्छा लगा. हम पढ़ते तो बहुत कुछ हैं परंतु इतनी गहराई में नहीं पहुंच पाते. मनोज कुमार जी ने बड़ी सादा और सरल भाषा में इसकी व्याख्या की है जिसके लिए उनको बहुत-बहुत बधाई.

नीना पॉल, यू.के.

गर्भनाल पत्रिका का कद दिन-प्रतिदिन ऊंचा होता जा रहा है. इस पत्रिका में पौराणिक, आधुनिक, सामाजिक सभी तरह के साहित्य की विविधता होती है. पढ़कर मन को बड़ा सुकून मिलता है.

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी द्वारा 'साहित्य में मौलिकता का प्रश्न', मधु अरोड़ा जी की व्यंग्यकार डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी जी से बातचीत, श्रीमान राजकिशोर जी का नजरिया 'प्रतिभा और मेधा' श्रीमान रामेश्वर कांबोज हिमांशु जी की लघुकथा 'नवजन्मा' तथा डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र जी का स्मरण, सभी आलेख एक से बढ़कर एक हैं.

लेकिन सबसे ज्यादा इस अंक में जो पसंद आया है, वह है मनोज कुमार श्रीवास्तव जी की सुंदरकाण्ड की व्याख्या, 'सुंदरकाण्ड का नाम सुंदरकाण्ड क्यों.' यह अपने आप में अद्‌भुत है. इस व्याख्या की तारीफ करने के लिए मेरे जैसे छोटे पाठक के पास शब्द नहीं हैं. श्रीमान मनोज श्रीवास्तव जी को हार्दिक बधाई.

आशा मोर, त्रिनिदाद

गर्भनाल के ६७वें अंक में मनोज कुमार श्रीवास्तव का 'सुन्दरकाण्ड का नाम सुन्दरकाण्ड क्यों?' आलेख पढ़ा. पढ़ते समय बराबर यह अहसास होता रहा कि लेखक केवल बहुपठित और बहुश्रुत नहीं है, उसे यह भी पता है कि अपनी धरोहर का विनियोग सामयिक समस्याओं के समाधान में कैसे किया जाता है. 'सुन्दर' शब्द की उसने सौंदर्यशास्त्र की दृष्टि से अच्छी विवेचना की है.

वस्तुतः रामायण के अन्य कांडों के नाम या तो स्थानवाचक (अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड) हैं या घटना की ओर संकेत करने वाले (युद्ध काण्ड), बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड को यद्यपि प्रक्षेप माना जाता है, तथापि उनके नाम भी अपनी कथावस्तु का स्पष्ट संकेत देते हैं, केवल सुन्दरकाण्ड ऐसा है जिसकी 'सुन्दरता' अवगुंठन में छिपी हुई है. विद्वान लेखक ने अपने आलेख में उसे अवगुंठन से बाहर लाने का जी तोड़ प्रयास किया है. इसके लिए उसे बधाई. लेखक ने अपनी विवेचना में तुलसीकृत मानस को केंद्र में रखा है, वाल्मीकि की चर्चा कम है, जबकि काण्डों का नामकरण वाल्मीकि ने किया था, 'सुन्दरकाण्ड' नाम उन्होंने रखा. तुलसी ने उसे यथावत अपनाया. अतः वाल्मीकि को केंद्र में रखना बेहतर होता. लेखक का भाषा पर अच्छा अधिकार है. यह देखकर विशेष प्रसन्नता होती है कि अब भारतीय प्रशासनिक सेवा में हिंदी के ऐसे विद्वान भाषाविद भी हैं. आशा है इनका भाषा प्रेम केवल साहित्य तक सीमित नहीं रहेगा, बल्कि 'राजभाषा हिंदी' का वनवास भी समाप्त कराएगा.

प्रभुदयाल मिश्र जी वेद मन्त्रों का बहुत ही स्पष्ट ढंग से काव्यानुवाद कर रहे हैं और इस प्रकार वेद सन्देश को जन-सुलभ बना रहे हैं. उनके इस प्रयास की मैं हृदय से सराहना करता हूँ. उन्हें हार्दिक बधाई.

रवीन्द्र अग्निहोत्री, ऑस्ट्रेलिया

प्रतिक्रिया

गर्भनाल पत्रिका का जून-२०१२ अंक सामने है - अपनी बात से आपकी बात तक पत्रिका का विविधता पूर्ण विस्तार प्रभावशाली है. इस विविधता को विचार से लेकर बातचीत तक, नज़रिया से खोज खबर तक, स्मरण और यात्रा वृत्तांत से लेकर सिनेमा की बात और कविता-कहानियों तक रुचिपूर्वक पढ़ती रही.

थोड़ा ठहर कर कुछ शब्द 'व्याख्या' में सुन्दरकाण्ड पर प्रस्तुत सुचिंतित आलेख के लिए कहना चाहती हूँ. यह विद्वतापूर्ण आलेख जिस तरह पर्त-दर-पर्त विगत और वर्तमान के परिदृश्य को उन्मीलित करता है, वह अत्यंत विस्मयकारी है. यहाँ विषय की भावुक व्याख्या भर नहीं है, बल्कि विद्वान लेखक भारतीय और पाश्चात्य सौंदर्य की अवधारणा को बहुत सार्थक तरीके से पूरी व्याख्या में गूंथता है. सुन्दरकाण्ड में तुलसी के कर्म सघन गत्यात्मक सौंदर्य के अवबोध को बाजारवाद के परिप्रेक्ष्य में निरूपित करता यह आलेख मेरी निगाह में इस अंक की उपलब्धि है.

विजया सती, बुदापैश्त

श्री मनोज कुमार श्रीवास्तव का सुन्दरकाण्ड पर लिखा लेख रोचक और सटीक लगा. जहाँ तक 'सुन्दरकाण्ड' को 'सुन्दर' कहने की बात है - इसमें संभवतः गोस्वामी तुलसीदास आदि कवि वाल्मीकि का ही अनुसरण कर रहे थे. पर यह सच है कि सुन्दरकाण्ड में बहुत कुछ अत्यंत सुन्दर है. मेरे विचार में रामकथा हम सबकी कहानी है. भगवती सीता, अजन्मा होने के कारण आत्मा की प्रतीक हैं. आत्मा का परमात्मा (भगवान राम) से मिलन होता है. जब तक सीता राम के संग थीं तब तक आनंद ही आनंद था - चाहे यह समय अयोध्या के राजमहल में गुजरा हो या बीहड़ जंगलों में. सोने के मृग के लोभ में सीता का अपहरण दशानन कर लेता है. दशानन इस बात का प्रतीक है कि बहिर्मुख होने पर हम दसों दिशाओं में भटकते हैं और अपनी दसों इन्द्रियों के दास बन जाते हैं. राम से विमुख होने पर सीता को बहुत दुःख होता है और वे राम को निरंतर याद करती हैं. तब राम अपने दूत, हनुमानजी, जो सद्गुरु के प्रतीक हैं, सीता के पास भेजते हैं. केवल सद्गुरु ही आत्मा को परमात्मा की बातें और परमात्मा को आत्मा की बातें बता सकते हैं. सुन्दरकाण्ड इसलिए भी सुन्दर है क्योंकि इसमें यह आशा जागृत की जाती है कि उनसे बिछोह होने के बावजूद राम हमें याद करते हैं और हमारे कल्याण के लिए कार्यरत हैं. इससे अधिक सुन्दर और क्या हो सकता है?

अंततः सीता और राम का मिलन होता है. आत्मा और परमात्मा के मिलन, बिछोह और पुनर्मिलन की कथा होने के कारण रामकथा हम सबकी कथा है. इसलिए यह सब जगह लोकप्रिय है, यहाँ तक कि उन देशों में भी (जैसे इंडोनेसिया) जहाँ हिन्दू धर्म को मानने वाले बहुत कम लोग हैं.

राघबेन्द्र झा, ऑस्ट्रेलिया

गर्भनाल का जून-२०१२ अंक पढ़ा, जो अत्यंत रोचक एवं ज्ञानवर्धक है. सुन्दरकाण्ड के बारे में बहुत ही रोचक तरीके से लिखा एवं शोध किया गया है और गर्भनाल पत्रिका में शामिल होने पर इसमें चार चाँद लग गए हैं. इस व्याख्या में पुरातन समय और नवीन समय का तालमेल करते हुए लिखा गया है इसके लिए श्री मनोज कुमार श्रीवास्तव जी को साधुवाद. उन्होंने बड़े ही अच्छे तरीके से मापदण्डों को पेश किया है जो कि अतुलनीय है. गर्भनाल और मनोज जी को बहुत-बहुत बधाई. आशा करती हूँ भविष्य में भी गर्भनाल में इस तरह के कई लेख देखने को मिलेंगे.

अदिति, अमेरिका

'रामचरित मानस' तुलसी की कालजयी रचना चिंतकों के समक्ष हर बार नवीन अर्थ द्वार खोलती हैं. मनोज कुमार श्रीवास्तव की व्याख्या 'सुन्दरकाण्ड का नाम सुन्दरकाण्ड क्यों' इस काण्ड का पुनर्पाठ नवीन दृष्टि से प्रस्तुत कर रही है. यह मानस का पांचवां अध्याय है. इसमें पांच बार सुन्दर शब्द का प्रयोग हुआ है. जन मानस में निश्चय ही यह तांत्रिक प्रभाव उत्पन्न करने वाला अध्याय है. जैसे सुन्दरकाण्ड में सीता माता को दुखों से मुक्ति मिली, वैसे ही इसका पाठ करने से कष्ट दूर हो जाते हैं - ऐसी अवधारणा है. मनोज कुमार श्रीवास्तव ने इसकी दार्शनिक व्याख्या करते इसे पंचभूतों से जोड़ा है. स्पष्ट किया है कि सुन्दरकाण्ड का सुन्दर सत्यम और शिवम से भी जुड़ा है. यहां आत्मा का सौंदर्य प्रमुख है, शारीरिक नहीं. पूंजीवाद के संदर्भ में रावण और स्वर्ण लंका को बाजारवादी शक्तियां कहा है और कर्मवीर हनुमान द्वारा लंकादहन को परिवर्तन की वह आग माना है जिससे जागृति की ज्योति निकलती है. अशोक वाटिका की सीता को गोदान की धनिया या निराला की पत्थर तोड़ने वाली कहकर वे मानस की नायिका को सर्वहारा से जोड़ देते हैं. यह सर्वहारा भले ही क्रांति का समर्थक न हो, पर हनुमान की तरह पूंजीवादी श्रीलंका में उपद्रव तो कर सकता है. सुकरात, प्लेटो, थियोक्रिटस, राबर्ट क्लाइवों आदि पाश्चात्य दार्शनिकों के संदर्भ, क्रिस्टल कवरिंग, स्किन डीप, इस्थैटिक जैसे अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग मानस की व्याख्या को अधुनातन स्पर्श देते हैं. भाषिक गति का तो जवाब नहीं - 'पहले प्रलोभन का स्वर्णाकर्षण खड़ा करो, फिर अपना बाजार फैलाओ और उसके पीछे सैन्य शक्ति की धौंस चलने दो.'

मधु संधु, अमृतसर

जून-२०१२ के गर्भनाल में मनोज कुमार श्रीवास्तव का सुंदरकाण्ड पर गंभीर विवेचन पढ़ा. बहुत ग़हरा लेख है. मुझे लगता है कि यह लेख या सुंदरकाण्ड पर एक अलग से विशेषांक निकालें और उसमें आप इस विषय पर लेख आमंत्रित करें. कहानी, कविता आदि के साथ यह लेख मेल नहीं खा रहा. आज की जो पीढ़ी है और जिस तरह की आपाधापी है, उसमें इस तरह के लेख पढ़ने में मन ही नहीं लगेगा क्योंकि इस पीढ़ी को रामचरित मानस की ग़हरी जानकारी होगी, मुझे इसमें शंका है. आप इस कॉलम के अंतर्गत कोई हल्का-फुल्का मैटर रख सकते हैं जो पढ़ने से मन हल्का महसूस करे न कि 'ऊपर से चला गया' समझे.

मधु अरोड़ा, मुंबई

रामचरितमानस हिन्दी क्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान की भूमिका का निर्वहन करता रहा है. रोजी-रोटी का जुगाड़ करने अपने परिवार, समाज और मिट्टी से दूर होने को बाध्य लोगों को रामचरितमानस के सामूहिक पाठ ने ताजगी दी है. इसके जरिये भारत से दूर मॉरिशस, फिजी इत्यादि देशों में बसने को मजबूर लोग अपनी संस्कृति को कायम रख पाए. सुन्दरकाण्ड के पुनर्पाठ की चर्चा ने हमारे बचपन की एक याद ताजा कर दी. उस समय सुन्दरकाण्ड के एक प्रख्यात वाचक हुआ करते थे. बच्चू सूर उनका नाम था. उनके व्याख्यान का एक अंश. सुनने का अवसर मिला था. आज भी याद है. वे एक चौपाई की व्याख्या कर रहे थे. चूड़ामणि उतारि तब दिन्हा ?

इस चौपाई पर उन्होंने शंका उठाई सीता ने चिह्न स्वरूप चूड़ामणि ही क्यों दी. कोई दूसरा आभूषण क्यों नहीं. और गोस्वामीजी ने उतारि क्यों लिखा निकारि क्यों नहीं. फिर इन शंकाओं का निवारण वे करते रहे. इतना विद्वतापूर्ण एवं संगीतमय उनका पाठ था कि श्रोता मंत्रमुग्ध होकर बँधे रहे थे. आपका प्रयास मूल्यों के विलोपीकरण के इस काल खण्ड में एक सराहनीय प्रयास है. प्रश्नोत्तरी आकर्षक है.

गंगानन्द, चण्डीगढ़

सुन्दरकाण्ड का नाम सुन्दरकाण्ड क्यों? गर्भनाल जून २०१२ अंक में 'व्याख्या' के अंतर्गत प्रस्तुत इस आलेख में मनोज कुमार श्रीवास्तव जी ने सौंदर्य बोध की कला साहित्य एवं जीवन दर्शन आधारित पाश्चात्य बहु आयामी परिभाषाओं के आधार पर तुलसी के सुन्दरकाण्ड में 'नया अवबोध' की खोज जिस प्रकार से की है उसमें उनका बौद्धिक परिश्रम और अन्वेषक दृष्टि साफ़ तौर पर दिखाई देती है . परम्परा को प्रासंगिक बनाए रखने की आज की जरूरत को देखते हुए उनकी यह लगन निश्चय ही प्रशंसनीय है और अनुकरणीय भी. वैसे भी परंपरा, प्रतीक और पुराण से यदि प्रेरणा लेना है तो इनकी नित नयी समीक्षा होती रहनी चाहिए ताकि इनकी प्रासंगिकता बनी रहे और इनसे मिलने वाली भावात्मक ऊर्जा से जीवन संघर्ष में मदद भी मिलाती रहे जो कि साहित्य का परम लक्ष्य भी है. समाजशास्त्रीय दृष्टि से नए जीवन मूल्य स्थापित होने में वैसे भी समय लगता है ऐसे में वैचारिक शून्यता के संक्रमण काल में पारंपरिक प्रतीकों को प्रतिगामी उपमान बनाकर पेश करने की कला को ही साहित्यिक आस्वाद का पर्याय बताने में लगे कुछ बुद्धिजीवी तुरंत आगे आ जाते हैं इस लिहाज से भी मनोज कुमार श्रीवास्तव जी का यह सुन्दरकाण्ड अनुशीलन साहित्यिक चिंतन धारा को अनुप्राणित करने में सहायक तो है ही सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से भी मूल्यवान है. परन्तु सुन्दरकाण्ड के इस इनोवेटिव किस्म के प्रस्तुतीकरण में संप्रेषणीयता की शैलीगत दिक्कतें हैं; भारतीय सौंदर्यशास्त्र के मानदंडों का जिक्र तो कम है परन्तु पाश्चात्य परिभाषाओं की अतिरेकपूर्ण उपस्थिति है, काव्य विम्बों के माध्यम से आवश्यक पुष्टि का भी लगभग अभाव ही है इससे इसमें सैद्धांतिक आरोपण का आग्रह अधिक है यह भाव भी उपज सकता है.

जिस प्रकार गंगा अवतरित होकर शिवजी की जटाओं में उलझ गई थी कुछ उसी प्रकार कथ्य का प्रवाह लेखक के बनाये ज्ञान द्वीपों की श्रंखलाओं में विभाजित पुनार्विभाजित हो कर उत्तरोतर मंद पड़ता लगता है. पाठक की जिज्ञासा सरणी लेखक-सृजित विभिन्न काल खण्डों और असंबद्ध परन्तु बड़े परिश्रम से संबद्ध किये गए प्रसंगों, उद्धरणों की भूल भुलैयों में भटक सकती है इसका लेखक ने शायद ख्याल नहीं किया है. ऐसे नाम या उद्धरण उल्लेख पाद टिप्पणी रूप में देने की स्थापित पद्धति भी है विशेषकर शोधपरक आलेख में. इसे आक्सफोर्ड डिक्शनरी में दिए गए अंगरेजी के इस मुहावरे में कुछ यों कह सकते हैं : reader is unable to see the wood for the trees-unable to get clear view of the whole because of too many details : word meaning of 'wood' in Oxford Dictionary. अर्थात बहुत अधिक ब्योरे में जाने से पाठक (प्रस्तुत विचार को) समग्र दृष्टि से देख पाने में असमर्थ है. पर यह लेखक की शैलीगत विशेषता हो सकती है और लगती भी है. दो-एक उदाहरण दृष्टव्य हैं - सुन्दरकाण्ड में पंचतत्व की प्रभविष्णुता है - ऐसा कह कर इन्हें सुन्दरकाण्ड के शब्दों से जोड़ना साहित्यिक दृष्टि से लगभग निरर्थक लगता है क्योंकि साहित्य में तो इन पांच तत्वों का सृजन करने वाली उन पञ्च तन्मात्राओं का ही महत्व है जो सांख्य दर्शनानुसार - प्रकृति हैं. काव्य में इन तत्वों की गिनती के बजाय संवेग और संवेद के स्तर पर शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध की इन पञ्च तन्मात्राओं की तृप्ति से रसानुभूति कवि को अभीष्ट रहती है, इसलिए तुलसी के किस दोहे-चौपाई में किस तन्मात्रा की एन्द्रिक और ऐन्द्रियता से परे ले जा सकने वाली आह्लादकारी प्रस्तुति है इसका तनिक निदर्शन किया जाता तो सौंदर्य पर चर्चा को विस्तार मिलता. पर इसके स्थान पर सौंदर्य शब्द सुन्दरकाण्ड में कितनी बार आया है इसकी चर्चा की गई है जिससे बात बनती नहीं दिखती.

इसी प्रकार नास्त्रेदमस का उल्लेख उसकी अर्थ छटाओं के कारण किया गया है जो इस वजह से निरर्थक है कि उसने चर्च की सजा से बचने के लिए गूढता बनाई और मूल फ्रेंच के छंदों में इतालवी, जर्मन, आंग्ल और तद्भव शब्द रखे और समय उल्लेख नहीं किया. आज जो उसके नाम पर उपलब्ध है उसमें अनुवाद के भ्रम के अलावा हर १०-१५ साल में संभावित घटनाओं को दिखने की बाजारवादी वृत्ति ही अधिक है. स्थानाभाव के कारण इतना ही और कहा जा सकता है कि भारतीय सौंदर्य बोध किसी एक व्यक्ति या सिद्धांत से परिभाषित नहीं है. 'जो है' को सम्यक और समग्र दृष्टि से अनुभूत करने में ही सौंदर्य उतरता है. कवि इसे छंदबद्ध करता है, तो वैज्ञानिक इसे सिद्धान्त में निबद्ध; भक्त को यह बंसी की टेर जैसा कण-कण में सुनाई देता है - जो कल्याणकारी है, शिव है, वही शाश्वत है जो शाश्वत है वही सुन्दर है. तुलसी की सम्पूर्ण रामकथा 'बुध बिश्राम सकल जन रंजनि' है और मानवता के उर्ध्व आरोहण की कोशिश का दस्तावेज़ होने से अनूठे सौंदर्य बोध से ओतप्रोत है. तुलसी से पहिले वाल्मीकि ने भी सुन्दरकाण्ड नाम इस प्रसंग को दिया है इसलिए ऐसे अन्वेषण तो होना चाहिए पर किसी एक प्रसंग को सम्पूर्ण सौंदर्य बोध का प्रतिनिधि घोषित करने से बचा जाना चाहिए. यों तो संस्कृत साहित्य में भी ऐसी प्रवृत्ति है जैसे अभिज्ञान शाकुन्तलम् का चतुर्थ अध्याय और उसमें भी चार श्लोक को सौंदर्य का सार कुछ विद्वान मानते हैं.

ब्रजेन्द्र श्रीवास्तव, ग्वालियर

डॉ. हरदीप कौर सन्धु

१७ मई १९६९ को बरनाला (पंजाब) में जन्म. बी.एससी., बी.एड., एम.एससी., (वनस्पति विज्ञान), एम. फ़िल., पी.एच.डी. हिंदी व पंजाबी में नियमित लेखन. रचनाएँ अनेक पत्र-पत्रिकाओं के अलावा अंतर्जाल की प्रमुख पत्रिकाओं में प्रकाशित. वेब पर 'हिन्दी हाइकु' नामक चिट्ठे का सम्पादन. हिन्दी एवं पंजाबी में लिखती हैं. सम्प्रति : अनेक वर्षों तक पंजाब के एस.डी. कॉलेज में अध्यापन (बॉटनी लेक्चरार) के बाद अब सिडनी, आस्ट्रेलिया में निवास.

सम्पर्क : hindihaiku@gmail.com

किताब

जीवन के सरल-सहज बिम्ब

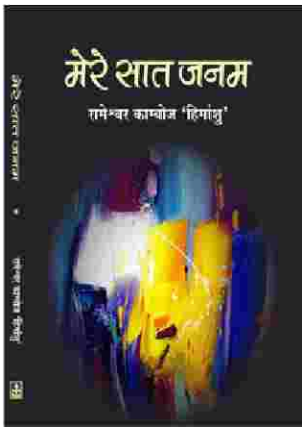

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' हिन्दी जगत के ऐसे रचनाकार हैं जो लघुकथा, गीत-नवगीत, बाल-साहित्य, व्यंग्य, समीक्षा के अलावा हाइकु लेखन में भी सक्रिय हैं. उनके 'मेरे सात जनम' हाइकू संग्रह को पढ़कर लगता है कि कम शब्दों में भाव और शिल्प की जो विशिष्ट प्रस्तुति इस काव्य-संकलन में मिलती है, वह इसे बेजोड़ बना देती है.

यह किताब ७ खण्डों में विभाजित है जिसमें कुल मिलकर ४९४ हाइकु शामिल किए गए हैं. पहले खण्ड 'उजाला बहे' में २८ हाइकु हैं. यह खण्ड आलोक को समर्पित है. दूसरा खण्ड 'नभ के पार' में २३ हाइकु हैं. इस खण्ड में उन्होंने जिन्दगी में निरन्तर चलते रह कर जिन्दगी की बाज़ी जीतने की कला सिखाते हुए हमें जुझारू बनने की प्रेरणा दी है.

तीसरा खण्ड 'पलकों में सपने' सबसे विस्तृत खण्ड है जिसमें कुल २०७ हाइकु लिखे गए हैं. मैं इस खण्ड का नाम 'रिश्तों के नाम' रखना चाहूँगी; क्योंकि यहाँ दर्जनों हाइकु एक से एक अनूठे भाव लिये हुए, रिश्तों की पावन चाँदनी बिखेरते जीवन को दूध-सा दूधिया करते हैं. हिमांशु जी के हाइकु बहु-अर्थी होते हैं. इनको हम जीवन की किसी भी अवस्था के अनुसार किसी पर भी लागू कर सकते हैं. यह तो पाठक की सोच पर है कि पढ़ते समय वह हाइकु किसको मुखातिब होकर पढ़ रहा है.

चौथा खण्ड 'भीगे किनारे' है जिस में ८४ हाइकु दर्ज किए गए हैं. रिश्तों की कद्र करने वाले हिमांशु जी प्रकृति के प्रति अटूट प्यार रखते हैं. यहाँ उनकी कलम हमें सृष्टि-सौन्दर्य का अनुभव कराती है. इस खण्ड के सभी हाइकुओं में प्रकृति के नाना रूपों के मनोहर चित्रों के साथ मानवीय संवेदना की गूँज भी सुनाई देती है. इन हाइकुओं को पढ़ते हुए पाठक सुन्दर वादियों में पहुँच जाता है, जहाँ सूरज, चाँद और तारों का सतरंगी संसार होता है.

प्रकृति जहाँ सुंदर है, वहाँ कभी-कभी क्रूर रूप भी धारण कर लेती है. कवि की कलम हमें प्रकृति का दूसरा रूप भी दिखलाती है. इस खण्ड को नाम दिया गया है 'भीगे किनारे'.

पाँचवाँ खण्ड 'भरी भीड़ में' है जिस में ७९ हाइकु हैं. दुनियावी सच को, सच के तराजू में तौलकर व्यक्त करता कवि पाठकों के मन में अमिट छाप छोड़ता है.

यहाँ अनेक हाइकू अपने हर सुख की आहुति देने वाली नारी को आखिर कौन-सा तमगा मिलता है? जैसे सवाल पाठकों के सामने रखते हैं. अनेक जगह उसके निज जीवन के कटु अनुभवों को व्यक्त किया गया है.

छठा खण्ड 'यही सच है' में केवल २४ हाइकु हैं मगर हर एक हाइकु पर पृष्ठ के पृष्ठ लिखे जा सकते हैं. यहाँ कवि जीवन का कड़वा सच केवल सतरह वर्णों में बाँधकर हमें दिखता है.

सातवाँ खण्ड 'सीपी के मोती' में ४९ हाइकु रूपी अनमोल मोती बिखरे हुए हैं. पुस्तक का यह आखिरी खण्ड पढ़कर पाठक का मन इन मोतियों की माला को अपने मन के गले में डालने के लिए उत्सुक हो उठता. असल में ये सीपी के मोती कोई और नहीं बल्कि कभी माँ है, कभी बहन और कभी बेटी है. कभी बिटिया मन के आँगन में नन्ही चिड़िया बन फुदकती है, कभी फूलों की फुलवारी.

'मेरे सात जनम' में लिखे हाइकु जहाँ पुस्तक के नाम के साथ इंसाफ करते हैं, वहाँ यह भी प्रमाणित करते हैं कि कवि शब्दों का जादूगर है एवं सफल हाइकुकार है, जिसने शब्दों के कैमरे में जीवन को कैद करके हमारे सामने पेश किया है.■

मेरे सात जनम (हाइकु संग्रह)
लेखक : रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'
पृष्ठ : १२८ सज़िल्द, मूल्य : १६० रुपये
संस्करण : २०११
प्रकाशक : अयन प्रकाशन, १/२० महरौली, नई दिल्ली-११००३०

गर्भनाल पत्रिका का ६७वां अंक भेजने के लिए धन्यवाद. यूँ तो गर्भनाल की जितनी भी तारीफ करूं कम है. ५ साल पहले जब पहला अंक ईमेल पर मिला था तब से अब तक हर अंक लगातार मिल रहा है, जिसके लिये सलाम पेश करता हूं. इस अंक में लघुकथा 'नवजन्मा' पढ़ कर आँखों में खुशी से आँसू आ गये. क्योंकि अभी कुछ समय पहले इंडिया टीवी चैनल पर एक सत्यकथा देखकर दिल बहुत उदास हो गया था. इंडिया में कुछ प्रान्तों में अल्ट्रा साउंड की मदद से लिंग मालूम कर लड़कियों को इस संसार में आने से पूर्व ही जाया कर दिया जाता है जो कि 'गुनाह-ए-कबीरा' है. इस प्रकार के कुछ केश हमारे पाकिस्तान में भी इसी तरह के सुनने में आ रहे हैं, जो कि दिल दहला देने वाला जुर्म है. उस सोसायटी पर जहाँ इस तरह के जुल्म होंगे वहां अल्लाह का कहर नाजिल होगा और वह समाज नष्ट हो जायेगा.

राइटर्स हजरत और ड्रामा निगारों से अनुरोध करता हूं कि नवजन्मा की तरह की छोटी-छोटी कहानियाँ, ड्रामा ज्यादा से ज्यादा लिखें, ताकि हमारे समाज की इस बुराई से लोग नफरत करने लगें और बेटियों को जो कि पिताओं के लिये रहमत होती हैं की कदर करें.

हमारी भी एक १३ साल की बेटी है जो सिटी स्कूल में 'ओ' लेबल में है और हमेशा ही अल्लाह की मेहरबानी से कक्षा में टॉप करती है और मेरा सिर फक्र से बुलन्द हो जाता है. मैं अपनी लड़की को गर्भनाल की कहानियाँ, लेख आदि पढ़कर सुनाता हूँ जिसके कारण उसे भी हिन्दी सीखने-लिखने और पढ़ने का शौक हो गया है. मैं उसे हिन्दी लिखना-पढ़ना सिखा रहा हूँ. हिन्दी की बुक्स कराची में उपलब्ध नहीं हैं. अगर कोई इंडिया जाने वाला मिला तो उससे हिन्दी की प्रारंभिक बुक्स मँगाकर दूंगा ताकि हिन्दी प्रेमियों में एक और इजाफा हो सके.

हमारी दुआ है कि आप की टीम जिस मेहनत और लगन से काम कर रही है अल्लाह उसे बरकरार रखने की ताकत दे. हमारा ईमान है कि अल्लाह किसी की मेहनत व्यर्थ नहीं जाने देता.

एजाज रिजवी, कराची, पाकिस्तान

पत्रिका का नया अंक प्राप्त कर प्रसन्नता हुई. अपनी बात प्रभावी और सार्थक है. ऐसे प्रसंग पाठकों की दृष्टि में आने ही चाहिये. सँजोने योग्य हैं. अभी अवलोकन मात्र ही किया है, केवल डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी जी का साक्षात्कार ही पूरा पढ़ा है, सुरुचिपूर्ण और ज्ञानवर्धक है.

बीच-बीच से कुछ और भी पढ़ा है. अतः अपने विचार पूरा पढ़ने पर ही लिखूँगी. अवलोकन से साहित्यिक सामग्री पठनीय और सराहनीय प्रतीत हो रही है. बधाई!!

शकुन्तला बहादुर, अमेरिका

गर्भनाल का ६७वाँ अंक मिला. बहुत सुन्दर लेख हैं, पर पत्रिका भारत के ज्वलंत विषयों में प्रवेश नहीं कर रही है और भारत की संस्कृति के प्रसार के विषयों में भी नहीं. भारत जल रहा है, संस्कृति, भाषा खतरे में है. यह मेरे निजी विचार हैं, जो गलत भी हो सकते हैं.

अशोक गुप्ता, दिल्ली

गर्भनाल जून-२०१२ माह का ई-संस्करण प्राप्त हुआ. विचार में इस बार साहित्य की मौलिकता की बात की गई है. सबका प्रयत्न होता है कि वो अपनी तरफ से कुछ नया दे समाज को. लेकिन वो सब भी महत्वपूर्ण होते है जो पूर्व में लिखे साहित्य को पुन; अपने शब्दों में लिखते हैं या उसे और सरल रूप में समझाते हैं.

बबीता वाधवानी, जयपुर

गर्भनाल पत्रिका के जून-२०१२ के अंक को इंटरनेट पर पढ़ लिया. पत्रिका का कलेवर और प्रकाशित सामग्री अत्यंत सराहनीय है.

प्रो. शिवदत्ता वावळकर, गाँधीनगर

गर्भनाल का ताज़ा अंक मिला. धन्यवाद. इस अंक में पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी का लेख श्रेष्ठ है. ज्ञान का साक्षात्कार भी पठनीय है. राज किशोर जी भी प्रभावित करते हैं. स्थायी स्तंभ तो अच्छे हैं ही. आप बहुत मेहनत कर रहे हैं.

यशवंत कोठारी, जयपुर

गर्भनाल का जून अंक देखा. संपादन में मेहनत नज़र आई. माया एँजेलो की कविता 'मैं फिर भी उठ खड़ी हूं' मन को छू गई.

संतोष श्रीवास्तव, मुंबई

गर्भनाल पत्रिका को पढ़ा और ऐसा महसूस हुआ कि जैसे साहित्य के दिन फिर बहुर आये हैं. काव्य रचनाएँ इतनी मर्मज्ञ हैं कि मानो फिर देश कवियों से सज गया है. यह पत्रिका वास्तव में भारत की खोई हुई साहित्यमेधा को जगाने एवं युवा कवियों, कथाकारों को लिखने के लिए मौका प्रदान करेगी, ऐसी उम्मीद है.

पी.के. चौरसिया, नई दिल्ली

'गर्भनाल' का ६७वां अंक ईमेल पर मिला! शुक्रिया! बेहद ख़ूबसूरत और पठनीय सामग्री से लबरेज़ है ये पत्रिका!

आपकी बात

सामग्री का चयन और प्रस्तुतीकरण दोनों ही बेहद आकर्षक हैं! अंक में श्री मनोज कुमार श्रीवास्तव द्वारा सुन्दरकाण्ड की व्याख्या अद्‌भुत है, शोधपरक तो है ही, अन्य सामग्री भी बेहतरीन हैं. कविताएँ अच्छी हैं; हाँ अगर कुछ अखरता है तो वो है ग़ज़लों का बेहद लचर होना! न बहर, न काफिया, न तगज्जुल! खैर, दाग तो चाँद में भी है. कुल मिलाकर इतनी ख़ूबसूरत पत्रिका के लिए अनंत बधाइयाँ! अगर पत्रिका की हार्ड कॉपी भिजवा सकें तो विशेष कृपा हो! पहले भी इस आशय का निवेदन कर चुका हूँ!

अशोक अंजुम
संपादक : 'अभिनव प्रयास', अलीगढ

हर अंक के सामान इस बार का अंक भी सुन्दर पठनीय है. विवेकानंद जी का स्मरण, आचार्य द्विवेदी जी के विचार, साहित्य चर्चा, प्रवास वर्णन, रामायण प्रश्न मञ्जूषा आदि कई उपयुक्त सामग्री है.

अनिल वर्तक, दिल्ली

गर्भनाल का जून-२०१२ अंक देखा. साज-सज्जा और चित्र बहुत अच्छे हैं. 'साहित्य की मौलिकता' भी बढ़िया है. कविताओं में 'अट्ठारह साल की उम्र', 'उन्मीलित नेत्रों से', 'यादें' और 'मैं एक पिता हूँ' बहुत पसन्द आईं.

बीनू भटनागर, दिल्ली

अपनी ईमेल से मैंने आपकी पत्रिका 'गर्भनाल' का जून-२०१२ का अंक डाउनलोड किया है. पत्रिका ज्ञानवर्द्धक व उच्चस्तरीय है, ऐसा मेरा सोचना ही नहीं है, अपितु विश्वास भी है.

श्रीकृष्ण सैनी

गर्भनाल के इस ई-अंक के निःशुल्क वितरण के लिये ढेर सारी शुभकामनाएँ. बचपन से पराग जैसी पत्रिकाओं को पढ़ने वालों के लिये गर्भनाल एक वायु की उत्तम धारा है. आज के युग में हिन्दी भाषा की शुद्धता एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न है. अन्य भाषाओं का प्रभाव इस सुन्दर और अप्रतिम भाषा की विशिष्टता को बाधित कर रहा है. यहाँ तक कि सरकारी धाराओं में, फिल्मों में इसका विपरीत असर हुआ है. यदि यही कर्म चलता रहा तो शीघ्र ही हिन्दी भाषा को अपना अस्तित्व खोना पड़ेगा.

अन्य चर्चाओं में विवेकानन्द जी के बारे में लिखा हुआ लेख एवं सुन्दरकाण्ड का विशेष अंक अति रुचिपूर्ण और ज्ञानवर्द्धक रहा.

रामनाथ शर्मा, मुंबई

Thanks a lot for your kind email and the soft copy of June 2012 issue of Garbhanal. It is wonderful and so timely brought out as today is June 1, and magazine is available for all of us. Amazing! I will read it thoroughly and get back to you.

Dr. K. K. Mishra, Mumbai

I saw your edited magzine by mail. We saw in this magzine good claiver, best articles, good designing. In one word we can say that "Better Progress". Thank you for sending

Dr. Gokuleshwar Kumar Dwivedy,
Allahabad

Thanks for the 67th Issue. Good articles, unknown fact of Swami Vivekanand is most valuable information. Poem by Dr. Monika Sharma is absolutely fantastic.

Sunilkumar Tiwari

अनुरोध

पाठकों एवं रचनाकारों से अनुरोध है कि प्रतिक्रियायें एवं रचनाएँ यूनिकोड में भेजें, हमें सुविधा होगी. रचनाओं के साथ संक्षिप्त परिचय एवं फोटो भी भेजें. अंक के बारे में अपनी प्रतिक्रिया निम्नलिखित ईमेल पते पर भेजें :

garbhanal@ymail.com

VIM is a prestigious & one of the oldest MBA Institute of Madhya Pradesh

Establishment year 1997, An ISO 9001:2008 Certified Institute

Run by A Jain Charitable Public Trust, Managed by IAS, IPS & Faculty having exposure of IIMs

VIM Offers Successful Career in Management & Commerce Field, Come & Join with us for Success

M.B.A. Full Time 2 Year PG Programme
Eligibility : Graduate/P.G.with at least 50% aggregate marks for General candidate and 40% aggregate marks for SC/ST/ OBC of M.P. as per DTE Norms

B.B.A. 3 Year Degree Course
Eligibility : 10+2 any discipline with minimum 50% marks

B.Com. Computers & Plain, 3 Year Degree Course
Eligibility : 10+2 with Commerce/Science

CAT (Certified Accounting Technician) - ICWAI, New Delhi
Eligibility : 10+2 any discipline

OUR TRUSTEES

Shri Madan Lal Benara, Chairman, Shri Suresh Jain, IAS, Managing Director, Shri R. K. Diwakar, IPS, Er. Vinay Kumar Jain, Er. D.C. Jain, Er. V.K. Jain, Shri S.C. Godha, Advocate, Shri Ajit Kumar Patni, Shri Pannalal Benara, Smt. Snehlata Jain, Shri Rajesh Jain, Secretary

Prof. Vikas Saraf
(Former Joint Director - ICWAI)
Additional Director

VIDYASAGAR INSTITUTE OF MANAGEMENT

(Approved by AICTE, New Delhi, Govt. of M.P. & Affiliated to Barkatullah University Bhopal)

Near Awadhpuri, BHEL, Bhopal (M.P.) - 462 022 (INDIA)

Ph.: 0755-2621718, Tele Fax: 0755-2621723,

e-mail: info@vim.net.in, vimbhopal@redifmail.com, Visit Us at: www.vim.net.in

Separate Hostel facility available for Boys and Girls within the campus